सीमित वितरण हेतु प्रकाशित

# देखी सुनी

वर्ष 2014, अंक 30

प्रिय साथियों

स्त्री सशक्तिकरण पर आधारित इस अंक में शामिल है – स्त्री सशक्तिकरण की शर्तें, स्त्री अधिकारों से जुड़े कुछ ऐतिहासिक विधेयक, दलित उत्पीड़न से जुड़े सांस्कृतिक कारक, महिला सुरक्षा व शौचालय का मानव अधिकार, सियासत के हाशिये पर महिलाएं। आशा है हमारा यह प्रयास आपके कार्य में उपयोगी साबित होगा।

नीतू रौतेला

अपने अनुभव, प्रतिक्रियायें व सुझाव अवश्य सांझा करें।

जागोरी संदर्भ समूह

# स्त्री सशक्तीकरण की शर्तें

**विकास नारायण राय**

बलात्कार और हत्या पर राजनीतिक रोटियां सेंकने के लिए बदायूं के कटरा सादतगंज गांव में पहुंचने वाले राजनीतिकों को उपेक्षा से नहीं लेना चाहिए। न इस जमात के दूर से ऊलजलूल अर्द्ध-सत्य बोलने वालों को। दरअसल, इन सतही कवायदों में स्त्री-सशक्तीकरण के पैरोकारों के लिए एक निहित संदेश है- स्त्री-विरुद्ध हिंसा के मसलों पर समग्र राजनीतिक एजेंडे की सख्त जरूरत है। मीडिया, एनजीओ और कानून के दम पर यह मुहिम एक सीमा से आगे नहीं जा पा रही। मर्द और औरत के असमान संबंधों को राजनीति के विषम शक्ति-संबंधों के समांतर भी रख कर देखना होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में बदायूं जैसे कांडों को जैसे महिला शौचालयों का अभाव संभव करता है, उससे कहीं बढ़ कर दबंगई को शह देने वाला राजनीतिक वातावरण भी।

सीनाजोर यौनहिंसा न बदायूं तक सीमित है न उत्तर प्रदेश तक। न गावों तक और न किसी पार्टी-विशेष के शासन तक। लिहाजा, बजाय इसे महज कानूनी या प्रशासनिक सवालों में बांधे रहने के, इसके राजनीतिक एजेंडे पर भी बात होनी चाहिए- क्या स्त्रियों के प्रति संवेदनशील पुलिस, राष्ट्रीय राजनीति के एजेंडे पर है? क्या महिलाओं के लिए सुरक्षित शौचालय का मुद्दा राजनीतिक दलों की चुनावी प्राथमिकताओं में शामिल है? औपनिवेशिक तेवर से चलाई जा रही कानूनी और न्यायिक व्यवस्था के लोकतांत्रिकीकरण को लेकर उनकी राजनीतिक समझ क्या है? विधायिका में महिला आरक्षण को राजनीतिक दल कब तक अमली जामा पहना पाएंगे? स्थानीय निकायों में आरक्षित सीटों पर चुनी गई महिलाओं का राजनीतिक स्पेस उनके पतियों ने कैसे हथिया रखा है? समाज में अराजक यौन-विस्फोट की चुनौती के सामने यौन-शिक्षा का परिदृश्य नदारद क्यों है?

इस बीच, बदायूं-दरिंदगी के क्रम में घोषित उत्तर प्रदेश सरकार का पांच लाख रुपए का मुआवजा, शिकार बहनों के लिए 'न्याय' का हिस्सा नहीं बना है। सरकारों के लिए पीड़ित पक्ष को आर्थिक मदद देना आसान होता है, पर न्याय करने में उन्हें समूची राजनीतिक सामाजिकता को शीशे में उतारना पड़ता है। मुआवजा एक सामान्य प्रशासनिक कदम है, जबकि 'न्याय' के दायरे में तो सत्ता-राजनीति की अग्नि-परीक्षा भी होगी। इसी समीकरण के चलते बदायूं में न प्रदेश सरकार का कोई समाजवादी मंत्री तुरंत पहुंचा और न केंद्र सरकार का कोई भाजपाई मंत्री। जो अन्य राजनीतिक वहां पंहुंचे, उन्होंने भी स्वयं को 'जंगल राज' को कोसने और अपराधियों को कठोर दंड देने के कानूनी एजेंडे तक सीमित रखा। स्पष्ट है कि मर्दवादी सामाजिकता की खुराक पर पलने वाले नेताओं की दिलचस्पी स्त्री-सशक्तीकरण के राजनीतिक एजेंडे में नहीं होने जा रही।

बदायूं कांड ने अखिलेश सरकार के अक्षम प्रशासन को ही नहीं, उसकी लंपट राजनीति को भी बेपर्द किया है। इसे तार्किक परिणति तक ले जाने के लिए जनता को अगले चुनाव का इंतजार रहेगा। पर पुलिसिया मिलीभगत और न्यायिक निष्क्रियता के ऐसे मामलों में, मुआवजे के अलावा, कानून-व्यवस्था बेहतर करने के नाम पर प्रशासनिक फेरबदल, निष्पक्षता के नाम पर सीबीआइ जांच और जवाबदेही के नाम पर दोषियों, पुलिसकर्मियों को कठोरतम दंड सुनिश्चित करने के सिवा और क्या किया जा सकता है? स्पष्ट है कि पैसे और प्रभाव के दम पर की जाने वाली यौनिक सीनाजोरियां, आज के मीडिया युग में, किसी भी शासन की साख के ग्राफ को राजनीतिक रसातल में पहुंचा सकती हैं। यह भी स्पष्ट है कि कानून और न्याय की प्रणालियों का लोकतांत्रिकीकरण और उनमें कार्यरत कर्मियों की स्त्री-संवेदी उपस्थिति वे अनिवार्य पूर्वशर्तें होंगी जिनसे लैंगिक न्याय की राजनीति में लोकतांत्रिक संतुलन मजबूत होगा।

स्त्री की सुरक्षा का सवाल उतना ही पुराना है जितना उसकी पुरुष-निर्भरता का इतिहास। सुरक्षा के नाम पर उसके लिए नैतिक और धार्मिक 'कवच' कम नहीं हैं; साथ ही पारिवारिक, सामाजिक, कानूनी और प्रशासनिक एजेंडों की भी भरमार है। पर 'निर्भया' या 'बदायूं' जैसी सामूहिक बलात्कार और हत्या की दरिंदगी का विस्फोट समय-समय पर याद दिलाते रहने के लिए पर्याप्त है कि ये एजेंडे यथास्थिति का तोड़ नहीं दे पाए हैं।

दरअसल, इन लैंगिक नृशंसताओं को संभव करने की राजनीति की टक्कर का प्रति-एजेंडा दे सकने वाली राजनीतिक जमीन को तोड़ने का वक्त अभी आना है। इस हद तक, स्त्री-विरुद्ध हिंसा के राजनीतिकरण की हर कवायद को सकारात्मक ही कहा जाएगा।

मसलन, बदायूं कांड अंजाम होने में सहायक परिस्थितियां- पीड़ितों की अंधेरे में खुले में शौच की विवशता या पुलिस की दबंग अपराधियों के पक्ष में घातक निष्क्रियता- राजनीतिक एजेंडे पर आने पर ही बदलेंगी। सबसे पहले एक स्वीकारोक्ति दर्ज करनी होगी कि स्त्री की सुरक्षा उसे विवश बनाए रख कर नहीं की जा सकती। पुराना चलन रहा है कि स्त्री को कमजोर रखो और उसके परिवार और परिवेश के मर्द उसकी सुरक्षा करें। पर इससे स्त्री सुरक्षित नहीं की जा सकी। दिसंबर 2012 के बर्बर निर्भया प्रसंग के बाद यह जिम्मा 'कठोर' और 'मजबूत' कानूनों के हवाले करने का सिलसिला चल पड़ा है। पर स्त्री ज्यों की त्यों असुरक्षित है, क्योंकि वह अब भी परिवार और समाज की सत्ता-राजनीति का सबसे कमजोर मोहरा है।

यानी मर्दों के अनुशासन में या कानूनों के घेरे में स्त्री खुद को सुरक्षित नहीं पा रही है। दरअसल, आज स्त्री की सुरक्षा की पूर्वशर्त है कि स्त्री खुद सशक्त हो। महज कड़े कानून बनाने से यह सशक्तीकरण नहीं हो सकता। महज समाज की सतह पर स्त्री की उपस्थिति बढ़ने से उसकी स्थिति मजबूत नहीं हो जाती। यह स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिए कि लोहे की बेड़ियों को लोहे की धार ही काटेगी। स्त्री-सशक्तीकरण के मुद्दे को राजनीतिक एजेंडे पर लाए बिना स्त्री-सुरक्षा के लिए वांछित वातावरण बनाने की दिशा में और आगे बढ़ पाना संभव नहीं लगता।

**स्त्री के विरुद्ध नियमित रूप से होने वाली हिंसा को उसके केवल एक रूप- यौनिक हिंसा- के चश्मे से देखने का रिवाज बंद किया जाए। जो समाज बसों, कार्यस्थलों और निर्जन स्थानों में बलात्कार और छेड़छाड़ को लेकर इतना उद्वेलित हो उठता है, वह घर-घर में स्त्री के रोजमर्रा के उत्पीड़न और कार्यस्थलों पर स्त्रियों के साथ होने वाले भेदभाव पर चुप्पी साधे रहता है।**

इस संदर्भ में दूसरा जरूरी पहलू स्त्री-सुरक्षा के सामंती तौर-तरीकों को नकारने की इच्छाशक्ति दिखाने का है। स्त्री-सुरक्षा को, राखी-व्यवस्था या पर्दा-व्यवस्था या ड्रेस-कोड, चारदीवारी या पहरेदारी, यहां तक कि पुलिस गश्त-नाकेबंदी जैसे उपायों के हवाले करने की व्यर्थता को स्वीकार कर ही हम आगे बढ़ सकते हैं। याद रखना चाहिए कि इन सामंती तौर-तरीकों से स्त्री सशक्त नहीं हुई है, बल्कि सामंती जीवन-मूल्य सशक्त हुए हैं। स्त्री के सशक्तीकरण के लिए कानून, न्याय और पुनर्वास से सकारात्मक मिलाप की गारंटी, पैतृक संपत्ति में बराबरी, जीवन-साथी चुनने की स्वतंत्रता, शिक्षा, कैरियर और मातृत्व चुनने का अधिकार, पारिवारिक-सामाजिक-आर्थिक निर्णयों में भागीदारी, आदि लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित रास्ते आक्रामक रूप से खोलने होंगे।

इन रास्तों पर राजनीतिक पहल के अभाव को मीडिया या एनजीओ की मुहिम से भरा नहीं जा सका है। न विधिक दखल और न्यायपालिका की सक्रियता इस शून्य को भर पाई है। इस संदर्भ में सामाजिक चेतना की रुग्णता को देश भर में खाप मानसिकता से की जाने वाली 'इज्जत'-हत्याओं और एसिड-हमलों में देखा जा सकता है। ऐसी हिंसा के लिए बदनाम राज्य हरियाणा की दो खापों ने 'उदारवादी' पहल के नाम पर, अंतर्जातीय विवाहों पर से सदियों पुरानी रोक हटाने का निर्णय लिया है। राजनीतिक, सामाजिक और मीडिया-टिप्पणियों में इसे प्रगतिशील कदमताल करार दिया गया, जबकि खापों ने वास्तव में अपने समाज में प्रचलित कन्या भ्रूण-हत्या और स्त्री-तस्करी पर मोहर लगाने का अपराध किया- क्योंकि व्यापक भ्रूण-हत्याओं से लड़कियों की कमी के चलते इन्हें पत्नियां आर्थिक और जातीय रूप से कमजोर क्षेत्रों/ तबकों से खरीद कर लानी पड़ रही हैं।

तीसरा महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मुद्दा बनेगा वर्तमान स्त्री संबंधी कानूनी प्रावधानों और प्रक्रियाओं के स्त्री के दृष्टिकोण से पुनरवलोकन का। अब तक हुआ यह है कि स्त्री-सुरक्षा को लेकर बने तमाम कानूनों ने राज्य को सशक्त किया है, न कि स्त्री को। अपराधियों की सजाएं बढ़ाने या कानून-न्याय तंत्र को कोसने से न पीड़ित को धक्के खाने से राहत मिलती है और न आगे के लिए स्त्री-विरुद्ध अपराधों पर रोक लगने में मदद। बस असंवेदी राज्य-तंत्र की शक्तियों में वृद्धि जरूर हो जाती है।

जबकि स्त्री के नजरिए से बने कानूनों की कसौटी ही यह होगी कि पीड़ित को घर बैठे सहायता और तय समय-सीमा में राहत उपलब्ध हो; उसे न्याय और पुनर्वास समयबद्ध मिले। यही नहीं, कानून-व्यवस्था और न्याय-व्यवस्था से जुड़े किसी भी अधिकारी या कर्मचारी के लिए स्त्री-संवेदी प्रामाणित होना भी अनिवार्य होगा।

समाज में स्त्री की पारंपरिक देवी-सती-रंडी-डाइन जैसी रूढ़-अतिरंजित छवियों को तोड़ना, उसके सशक्तीकरण की राह का चौथा चरण होगा। स्त्री की परजीवी, पराश्रयी, उपभोग्या, कुटनी जैसी छवि को मजबूत करने वाले तमाम सामाजिक-सांस्कृतिक रूपों का तिरस्कार करना होगा। लोकप्रिय मीडिया माध्यमों जैसे अखबारों, पत्रिकाओं, टीवी, सिनेमा, इंटरनेट आदि पर पुरुषवादी नजरिए से स्त्री के अपमानजनक या गैर-बराबरी के चित्रण को नए सिरे से अपराध घोषित करना होगा। सास, बहू के साथ 'साजिश' को अनिवार्यतः नत्थी करने वाले सजा के पात्र होंगे। बलात्कार को 'लड़के हैं गलती हो जाती है' कह कर टालने वाले और छप्पन इंच के सीने से 'मर्दानगी' को महिमामंडित करने वाले राजनेता चुनाव से बहिष्कृत किए जाएंगे। सुरक्षा/ पुलिस बलों के मर्दाने मानक कूड़ेदान में होंगे।

अंत में जरूरी है कि स्त्री के विरुद्ध नियमित रूप से होने वाली हिंसा को उसके केवल एक रूप- यौनिक हिंसा- के चश्मे से देखने का रिवाज बंद किया जाए। जो समाज बसों, कार्यस्थलों और निर्जन स्थानों में बलात्कार और छेड़छाड़ को लेकर इतना उद्वेलित हो उठता है, वह घर-घर में स्त्री के रोजमर्रा के उत्पीड़न और कार्यस्थलों पर स्त्रियों के साथ होने वाले भेदभाव पर चुप्पी साधे रहता है। स्त्री के जन्म से शुरू होकर भेदभाव और हिंसा का खेल कमोबेश उसके जीवन भर चलता ही रहता है। दरअसल, यौनिक हिंसा की जड़ें लैंगिक असमानता की जमीन से ही खुराक पाती हैं। परिवार से लेकर समाज तक सिखाई यही है कि हावी पुरुष अपनी मनमानी को तरह-तरह से स्त्री की कीमत पर व्यक्त कर सकता है। 'मर्यादा' और 'इज्जत' के नाम पर स्त्री चुपचाप सहे या फिर निर्भया, बदायूं, खाप, एसिड भुगते।

क्या भारतीय स्त्री की दुनिया ऐसे ही चलने दी जाएगी? वंचना और हिंसा, अपमान और अन्याय के दंश से उसका जीवन मुक्त होगा? क्या सामाजिक-आर्थिक वंचनाएं, भ्रूण हत्याएं, एसिड हमले या खाप की सजाएं किसी सामूहिक बलात्कार से कम दरिंदगी के प्रसंग हैं? क्या हर मर्द को मर्दवादी स्वेच्छाचारी बना कर उसका परिवार ही उसे संभावित यौन-अपराधी के रूप में तैयार नहीं करता है? क्या स्त्री को एक संवेदी कानूनी और प्रशासनिक परिवेश मिलेगा? राजनीति को बदले बिना स्त्री का पारिवारिक, सामाजिक और कार्यस्थल का वातावरण बदलेगा?

इसी विमर्श से स्त्री का राजनीतिक एजेंडा निकलता है। इसे लागू करने के लिए ग्राम पंचायतों और स्थानीय निकायों से लेकर विधानमंडलों तक में स्त्रियों का आरक्षण भी, मनोवैज्ञानिक कवायद ही सिद्ध होगा। स्त्रियों के सशक्तीकरण की राजनीति गांव-गांव, गली-गली, घर-घर पहुंचनी चाहिए।

*vnraiips@gmail.com*

जनसत्ता 16.06.2014

2

# प्रायश्चित का पहला कदम-सांस्कृतिक क्रांति

**वस्तुतः स्त्रियों के खिलाफ हिंसा के तीन बड़े कारक हैं। उनमें दबग जातियों का वर्चस्व और पुरुष प्रधान समाज को सनातन सत्य मानने की मानसिकता और तीसरा कानून व पुलिस व्यवस्था का राजनीतिकरण। इन तीनों ने मिलकर एक तरफ दबंग जातियों के उच्छृंखल लोगों को बगैर पुलिस, अदालत और जेल की परवाह किए वंचित वर्गों की स्त्रियों विशेष तौर पर सभी स्त्रियों को सामान्यतः अपने स्वाभाविक शिकार के तौर पर देखने की मानसिकता दी है। औरतों के खिलाफ हिंसा का मूल आधार यही है**

■ प्रो. आनंद कुमार
समाज वैज्ञानिक, जेएनयू

हमारे समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों में असमानता की जो प्राचीन परंपरा रही है, उसके निर्मूलन के लिए हम यह आशा करते रहे हैं कि समाज की स्वतंत्रता और सभाज में शिक्षा के जरिए नए मूल्यों का प्रसार होगा। जिसमें हम एक दूसरे के साथ मानवता के आदर्शों के आधार पर व्यवहार करना पसंद करेंगे। कई अर्थो में हमारे संविधान ने नर-नारी समता को एक स्पष्ट आधार बनाकर इसके लिए जरूरी वैधानिक बुनियाद भी बनाई है। कई प्रकार के सुधारवादी प्रभावों ने भी हमारे लिए नर-नारी समता पर आधारित भारतीय सस्कृति की प्रगति के लिए योगदान किया है। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में यह अत्यंत चिंताजनक तथ्य सामने आ रहा है कि स्त्रियों के प्रति क्रूरता की दृष्टि से हम बहुत खतरनाक हद तक एक बिगड़ा हुआ समाज जैसा दिखाई दे रहे हैं।

## मध्ययुगीन मानसिकता

न्यायमूर्ति जेएस वर्मा और उनके सम्मानित साथियों ने बहुत व्यवस्थित अध्ययन और शोध के बल पर कुछ ठोस सिफारिशें भी प्रस्तुत की। पर हमारी सरकारें-केंद्र और राज्य-दोनों ही स्तर पर इस रिपोर्ट को किसी जरूरी हस्तक्षेप के लिए आधार मानने के वायदे से पीछे हट गई है। फलस्वरूप एक बड़ा सुधार अभियान शुरू होने से पहले ही खत्म-सा हो गया है। अब उत्तर प्रदेश से लेकर हरियाणा तक मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश तक महिलाओं के खिलाफ बर्बरता की खबरों की हहराती नई बाढ़ ने हमें फिर एक समाज और सभ्यता के रूप में शर्मिंदा होने को मजबूर किया है। दूसरे वर्गो और जमातों की स्त्रियों को अपमानित करना, उनके साथ बलात्कार करना और उनको गांव के ही किनारे के पेड़ों पर टांगकर मार डालना मध्ययुगीन मानसिकता के अलावा कुछ नहीं है। जहां हम अन्य जमातों की स्त्रियों को अपनी आक्रामकता के शिकार के रूप मे सहज देखने के आदी हुआ करते थे। अब 21वीं शताब्दी में, शिक्षा और जनतंत्र दोनों के प्रसार के बावजूद अगर हम कमजोर वर्गो की स्त्रियों को अपनी वासना और क्रूरता का शिकार बनाने में परहेज नहीं कर पा रहे हैं तो यह समाज में कानून के घटते डर का परिणाम है। लिबास, निजी जीवन में आजादी के आधार पर परंपराओं से हट कर जीने की कोशिश, नए तरह के व्यवसायों में प्रवेश और पश्चिमीकरण जैसे तथ्यों को एक सांथ जोड़कर हम अनजाने में स्त्रियों को ही स्त्रियों के खिलाफ हो रही अराजकता के लिए जिम्मेवार ठहराते हैं। यह तो अत्यंत अनुचित है।

## तीन कारक

वस्तुतः स्त्रियों के खिलाफ हिंसा के तीन बड़े कारक हैं। उनमें दबंग जातियों का वर्चस्व और पुरुष प्रधान समाज को सनातन सत्य मानने की मानसिकता और तीसरा कानून और पुलिस व्यवस्था का राजनीतिकरण। इन तीनों ने मिलकर एक तरफ दबग जातियों के उच्छृंखल लोगों को बगैर पुलिस, अदालत और जेल की परवाह किए वंचित वर्गों की स्त्रियों को विशेष तौर पर सभी स्त्रियों को सामान्यतः अपने स्वाभाविक शिकार के तौर पर देखने की मानसिकता ही औरतों के खिलाफ हिंसा का मूल आधार है। अगर हम इस प्रवृत्ति का निराकरण करना चाहते हैं तो एक साथ तीनों जहरीले स्रोतों का शमन करना पड़ेगा। सबसे पहले पुलिस और कानून की व्यवस्था में स्त्री अपमान को हर तरह से असहनीय अपराध मानना चाहिए। जब किसी स्त्री का अपमान होता है और उससे भारत के राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया अवरुद्ध होती है। यह आधा भारत है, अगर हम स्वराज में स्त्री के स्वराज की कल्पना को हटा देंगे तो आधा भारत यातना और भय के अंधकार में जीने के लिए अभिशप्त हो जाएगा। यह कैसा स्वराजी राष्ट्र बनेगा?

**दूसरे** पितृ सत्ता और पुरुष प्रधानता की परंपराओं से भी आगे, निकलने की जरूरत आज अत्यंत प्रबल हो चुकी है। इसके लिए भारत के स्त्री आंदोलन ने उचित माहौल बना दिया है। संविधान के जरिए जरूरी वैधानिक ढांचा तो निर्मित हो गया है। लेकिन सामाजिक मूल्यों और आचरण के मापदंडों का क्या करेंगे? इसमें शिक्षा केंद्रों से लेकर समाज वैज्ञानिकों के शोध कार्यो तक एक परस्पर जुड़ा हुआ सिलसिला ही स्थायी समाधान कर सकता है। यह एक सांस्कृतिक क्रांति की मांग कर रहा है। नर-नारी समता के लिए समर्पित समाज बनाए बिना भारत स्त्रियों के संदर्भ में दुनिया की सबसे पिछड़ी सभ्यताओं के वारिस के रूप में हमेशा-हमेशा बने रहने के लिए अभिशप्त-सा लगता है। इस अभिशाप को कैसे दूर करें? बिना साधना और सुधार के तो नहीं ही होने वाला है।

स्त्री विरुद्ध हिंसा के **तीसरा स्रोत,** दबंग जातियों के वर्चस्व का है। इसके लिए जाति का कोटा और पिछड़ों के लिए आरक्षण अपर्याप्त-सा लगता है। इसलिए कि जाति संबंधित अन्यायों को दूर करने में हमारी अब तक की सभी योजनाओं में स्त्रियों के लिए विशेष अवसर का प्रसंग छूट-सा गया है। दलित जातियों के आरक्षण से लेकर अन्य पिछड़ा वर्गो के लिए दिए गए आरक्षण तक में संघ लोक सेवा आयोग से लेकर कॉलेजों में मिल रहे प्रवेश अवसरों की समीक्षा करने पर लगभग 90 प्रतिशत लाभार्थी इन जमातों के पुरुष ही दिखाई पड़ते हैं। आज स्त्रियों को विशेष अवसर दिए बिना स्त्रियों के साथ चल रही अन्याय परंपरा के बड़े स्रोत यानी दबंग जाति के पुरुषों का मनमानापन नहीं रुक सकता।

## अपमान से मजबूत होता विभाजन

साराशंतः स्त्री का अपमान समाज को कमजोर करता है। स्त्री के साथ हिंसा राष्ट्रीय एकता से साथ हिंसा है क्योंकि हर हिंसा की घटना स्त्री और पुरुष के बीच में देश की विभाजन रेखा को और ज्यादा मजबूत करता है। इसके समाधान के लिए कानून की रखवाली व्यवस्था को जाति और पुरुष प्रधान मानसिकता के संयोग से बने उपेक्षा भाव से ऊपर उठाना होगा। संभवतः स्त्रियों को पुलिस व्यवस्था में ज्यादा स्थान देना इसका एक तात्कालिक निराकरण होगा। दूसरे पुरुष प्रधान मानसिकता के स्थायी समाधान के तौर पर स्त्रियों के लिए विशेष अवसर की अब तक की उपेक्षित जरूरत को पूरा करना होगा। अगर स्त्रियां परिवार से लेकर पंचायत और लोक सभा तक पुरुषों के बराबर और कई मायनों में पुरुषों से आगे; समाज के निर्माण में जुटी दिखाई पड़ेगी तो उनकी क्षमता और श्रेष्ठता के बारे में हमें अलग से कोई विज्ञापन करने की जरूरत नहीं रहेगी। आखिरी तौर पर यह एक सांस्कृतिक क्रांति के अधूरेपन का भी परिणाम है। इसलिए हर स्त्री-पुरुष को, विशेष तौर पर नई पीढ़ी के पुरुषों को, विरासत में मिली स्त्रियों के खिलाफ बर्बरता की परंपरा से देश को आगे ले जाने का संकल्प करना और इसके लिए वैचारिक, रचनात्मक और आंदोलन तीनों स्तर पर सक्रियता को सर्वोच्च प्राथमिकता बनाना शायद अब निर्विकल्प है। इसकी शुरुआत कैसे करें? मेरा सुझाव होगा कि सारे देश में स्थानीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशें को लागू कराने के लिए जनएकता और जनहस्तक्षेप हमारी तरफ से प्रायश्चित का पहला कदम हो सकता है। ■

राष्ट्रीय सहारा 28.06.2014

# दलित उत्पीड़न का कैसे हो प्रतिकार!

मुद्दा

एच एल दुसाध

देश में आये दिन कहीं न कहीं घटित हो रही दलित-उत्पीड़न की घटनाओं को देखते हुए इस समस्या पर नए सिरे से विचार करना लाजिमी हो जाता है। हाल के दिनों में अल्प अंतराल के मध्य ऐसी ही दो घटनाएं सामने आईं। पहली हरियाणा के हिसार जिले के भगाणा गांव की है। 2012 में जाटों द्वारा वहां के तमाम दलित परिवारों का बहिष्कार कर दिया गया था जो अब भी जारी है। बहिष्कार के विरोध में सौ के करीब अपेक्षाकृत मजबूत दलित जातियों के लोगों ने तो अपने परिवार और जानवरों सहित हिसार के मिनी सचिवालय के निकट में आसमान के नीचे आश्रय ले लिया किन्तु कुछ दलित परिवारों ने गांव में ही टिके रहने का निर्णय लिया। इन्हीं परिवारों की चार लड़कियों को भगाणा के दबंगों ने 23 मार्च को अगवा कर दो दिनों तक उनका शारीरिक शोषण किया। आठवी और नौवी क्लास में पढ़नेवाली इन लड़कियों का कसूर सिर्फ इतना था कि वे पढ़ना चाहती थी। उनके अभिभावकों ने उन्हें इसकी इजाजत दे रखी थी लेकिन गांव के दबंगों को यह मंजूर नहीं था, लिहाजा उन्हें यह सजा देकर असलियत बता दी गई। स्थानीय प्रशासन से हताश-निराश पीड़ित परिवार पिछले दिनों दिल्ली के जंतर-मंतर पर इंसाफ की गुहार लगाते दिखे और उनकी मुहिम में दिल्ली के कई छात्र-शिक्षक, लेखक-एक्टिविस्ट आदि जुड़े। लेकिन अभी भगाणा पीड़ितों के पक्ष में अंवाज बुलंद हो ही रही थी कि दिल्ली बॉर्डर पर नोएडा के कनावनी गांव में 29 अप्रैल को जमीनी विवाद के चलते दबंगों ने दलित बस्ती के अनेक घर तहस-नहस कर दिए। छावनी में तब्दील गांव में पुलिस की उपस्थिति के बावजूद दलित पलायन कर गए।

बहरहाल जब-जब भगाणा या कनावनी जैसे कांड होते हैं तो दलितों के साथ राष्ट्रप्रेम व मानवाताबोध संपन्न नागरिकों में भी चिंता की लहर दौड़ जाती है। वे सभा-संगोष्ठियां आयोजित एवं घटनास्थल का मुयायना कर असहिष्णु लोगों के कार्य की निंदा करते हुए उनके विवेक को झकझोरने का अभियान चलाते हैं लेकिन नतीजा सिफर ही निकलता है। समय-असमय परवर्तित स्थान पर दलित-विरोधी भावना का पुनः प्रकटीकरण हो ही जाता है। दलित-उत्पीड़न में हिन्दू धर्म की क्रियाशीलता देखते हुए संविधान निर्माता डॉ अम्बेडकर को कहना पड़ा था-'हिन्दू जाति भेद इसलिए नहीं मानते कि वस्तुतः वे क्रूर हैं या उनके मस्तिष्क में कुछ विकार है। वे जाति-भेद इसलिए मानते हैं क्योंकि उनका धर्म उन्हें जाति-भेद मानने के लिए विवश करता है। अतः कसूर उन धर्मशास्त्रों का है जिन्होंने उनकी ऐसी मनोवृत्ति कर दी है।'

जहां तक प्रतिकार का प्रश्न है तो डॉ.अम्बेडकर ने वर्षों पहले दलितों का मार्गदर्शन कर दिया था। उन्होंने इसका एकमेव उपाय दलित वर्ग को अपने हाथ में सामर्थ्य और शक्ति इकठ्ठा करना बताया था। वास्तव में डॉ.अम्बेडकर ने दलितों को अपने अत्याचारी वर्ग से निजात दिलाने का जो नुस्खा बाताया था, वह सार्वदेशिक है। सारी दुनिया में ही जो अशक्त रहे, उन पर सशक्त वर्ग का अत्याचार व उत्पीड़न होता रहा। सर्वत्र ऐसे लोगों को सशक्त बनाकर सबल वर्गो के शोषण-उत्पीड़न से निजात दिलाई गयी। अतः दलितो को भी दूसरे उत्पीड़न-मुक्त समाजों की भांति सशक्त बनाकर शोषण-उत्पीड़न से निजात

दिलायी सकती है। जहां तक दलितों को सशक्त बनाने का सवाल है, आजाद भारत की तमाम सरकारें इस काम में लगे रहने का दावा करती रही हैं पर बात इसलिए नहीं बन पाई है क्योंकि देश के योजनाकारों ने दलित अशक्तिकरण की पहचान करने का बुनियादी काम ही नहीं किया। ऐसे में उनके सशक्तिकरण का सम्यक उपाय भी वे नहीं कर सके।

सभ्यता के हर काल में जिनके हाथ में सत्ता की बागडोर रही, उन्होंने जाति, नस्ल, धर्म इत्यादि के आधार पर बंटे विभिन्न सामाजिक समूहों और उनकी महिलाओं के मध्य शक्ति के स्रोतों-आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक का असमान बंटवारा कराया। जो समूह शक्ति के स्रोतों पर जितना कब्जा जमा सका, वह उतना ही सशक्त और जो जितना इससे वंचित रहा, वह उतना ही अशक्त। सारी दुनिया में अश्वेतों, महिलाओं व अन्य वंचित समूहों को शक्ति के स्रोतों से दूर रखकर ही अशक्त बनाया गया। सारी दुनिया की पराधीन कौमों के साथ यही समस्या रही कि विजेताओं ने उन्हें शक्ति स्रोतों से वंचित कर शोषित-उत्पीड़ित किया। यदि तमाम विजेताओं ने गुलाम बनाए लोगों को शक्ति के स्रोतों में वाजिब शेयर दिया होता तो दुनिया में शायद कही भी स्वतंत्रता संग्राम संगठित करने की जरूरत नही पड़ती। अमेरिका का स्वाधीनता संग्राम; फ्रांस की राजक्रांति, गांधी-मार्टिन लूथर किंग (जू.) और मंडेला का संघर्ष अपने लोगों को उचित हिस्सेदारी दिलाने के लिए ही अस्तित्व में आया।

यह अलग से विचारणीय है कि जिन मानव समुदायों को शक्ति के स्रोतों से वंचित कर अशक्त मानव समुदाय में तब्दील किया गया, उनमें किसी की भी स्थिति दलितों जैसी दयनीय नहीं रही। मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास में किसी भी कौम को शक्ति के तीनों प्रमुख स्रोतों-आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक से पूरी तरह वंचित नहीं किया गया। दुनिया की अधिसंख्य वंचित कौमों को आर्थिक गतिविधियों से वंचित कर अशक्त बनाया गया पर राजनीतिक और विशेषकर धार्मिक क्रियाकलाप उनके लिए पूरी तरह मुक्त रहे। अपने यहां दलितों के रूप में विद्यमान विश्व की सर्वाधिक अशक्त कौम को दुःख-मुक्त करने के लिए मध्ययुगीन संतों और उत्तरकाल के असंख्य महानायकों ने मगजपच्ची की पर अम्बेडकर की भांति कोई भी उनके अशक्तिकरण के कारणों को सम्पूर्णता में नहीं समझ पाया। इसलिए वे मानवेतरों को शक्तिसंपन्न करने के बजाए उनके उत्पीड़कों के समक्ष हृदय परिवर्तन की गुहार लगाते रहे। यह अम्बेडकर ही थे जिन्होंने दलितों को सशक्त बनाने में सर्वशक्ति लगायीं। उनके प्रयासों से सदियों से बंद पड़े शक्ति के कुछ स्रोत दलितों के लिए मुक्त हुए, पर सारे नहीं। कारण, डॉ अम्बेडकर अपने समय में भारत के सबसे असहाय स्टेट्समैन रहे। यदि वे असहाय नहीं होते तो शक्ति के तमाम मोर्चों पर दलितों की हिस्सेदारी सुनिश्चित कर देते लेकिन आजाद भारत में उनके अनुसरणकारी क्या दलितों की समस्या समझ पाए? शायद नहीं।

वास्तव में आजाद भारत में दलितों के लिए शक्ति के सभी स्रोतों में वाजिब हिस्सेदारी की बजाय टुकड़ों-टुकड़ों में हिस्सेदारी की लड़ाई लड़ी जाती रही है। आज कोई निजी क्षेत्र में आरक्षण की लड़ाई लड़ रहा है तो कोई प्रमोशन में आरक्षण की लड़ाई में अपनी ऊर्जा खपा रहा है किन्तु आर्थिक-राजनीतिक और धार्मिक जैसे शक्ति के तीन प्रमुख स्रोतों के चप्पे-चप्पे की लड़ाई से वे आंखे मूंदे हुए हैं। यही कारण है कि दलित शक्ति के स्रोतों में मुक्कमल हिस्सेदारी से वंचित हैं। परिणामस्वरूप वे भगाणा और कनावनी में दबंगों के सामने असहाय व लाचार नजर आ रहे हैं।

राष्ट्रीय सहारा 07.05.2014

# महिला मानवाधिकार और सुरक्षा के लिए जरूरी शौचालय

## आधी बात पूरी बात

■ डॉ. कुमुदिनी पति

**भोर** में जब ग्रामीण औरतें झुंड बनाकर निकलती हैं अधिकतर पुरुष सो रहे होते हैं। वे शौच-क्रिया के लिए बाहर इसलिए निकलती हैं कि उनके अपने घरों में कभी शौचालय निर्मित करने की बात ही नहीं उठी। आखिर, पुरुषों को सार्वजनिक जगहों पर जाने में क्या शर्म और महिलाओं के जीवन की कठिनाइयों के बारे में सोचता ही कौन है? ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं का जीवन कितना कठिन हो जाता है, जब उनके लिए प्राथमिक सुविधाएं- शौचालय, गुसलखाना, पीने का पानी भरने के लिए हैंडपंप और मासिक के गंदे कपड़े फेंकने के लिए कोई जगह नहीं होती। इन सुविधाओं-से उन्हें वंचित रखने के मायने हैं उनके मानवाधिकारों का हनन! इतना ही नहीं, ऐसी स्थिति में उनका सुनसान और गांव के रिहायशी स्थानों से दूर जाने का मतलब है यौन हिंसा को खुलेआम निमंत्रण देना। नाबालिग लड़कियों और नवविवाहिताओं के लिए तो यह और भी भयावह स्थिति है, क्योंकि वे गांव के सामाजिक परिवेश और भौगोलिक स्थितियों से अनभिज्ञ रहती हैं। पर सोचने की बात है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर घरों में मोबाइल फोन और टीवी होने के बावजूद शौचालय नहीं बना। तो कहीं-न-कहीं उसे न समाज और न सरकारें मूलभूत आवश्यकता के रूप में देखती हैं और मानव मल के सही तरीके से 'डिस्पोजल' न होने के कारण सरकारों व आम लोगों को संक्रामक रोगों के उपचार में हजारों करोड़ रुपये प्रतिवर्ष व्यय करने पड़ते हैं।

सुनकर आश्चर्य होता है कि 2500 ईसा-पूर्व सिंधु घाटी सभ्यता में शहरों की सीवर व्यवस्था अत्याधुनिक थी, और मिस्र में 2100 ईसा-पूर्व। महिलाओं के शौच और गुसल की बेहतर व्यवस्था और पेयजल व्यवस्था को भविष्य के लिए मॉडल के बतौर क्यों नहीं अपनाया जा सका और क्यों जहांगीर द्वारा अलवर में निर्मित सार्वजनिक शौचालयों के मॉडल से लोगों ने सीख नहीं ली? सबसे बुरा दौर था 500 1,500 ईस्वी का, जब लोग गंदगी और बीमारी से जूझ रहे थे। पर फ्रांस में 1519 ईस्वी में ही 'सेसपूल' बनाना अनिवार्य हो गया और 1739 ईस्वी में पेरिस में सबसे पहला महिला शौचालय बना। भारत में कोई नीति न होने के कारण औरतों को अब घर-घर में बगावत कर अपने ससुराल में शौचालय बनवाने पड़ रहे हैं। उत्तर प्रदेश की प्रियंका भारती के अलावा बिहार की पार्वती और मध्य प्रदेश की सविता को अपने ससुराल में शौचालय बनवाने के लिए विद्रोह का रास्ता अपनाना पड़ा और वे तब तक वापस नहीं आईं जब तक शौचालय का निर्माण नहीं

**एक बहू, जिसे हर समय घर के बड़ों से पर्दा करना पड़ता है, जो अपनी मर्जी से बाहर नहीं निकलती और धीमी आवाज में बात करती है, उसको गर्मी, बरसात और कड़कड़ाती ठंड में दूर तक पैदल चलकर दैनिक क्रिया के लिए समस्त खतरे उठाते हुए जाना पड़ता है**

हुआ। इन महिलाओं ने ऐसे आंदोलन का सूत्रपात किया है जो ग्रामीण महिलाओं की इज्जत के सवाल को उठा रहा है। एक बहू, जिसे हर समय घर के बड़ों से पर्दा करना पड़ता है, जो अपनी मर्जी से बाहर नहीं निकलती और धीमी आवाज में बात करती है- उसको गर्मी, बरसात और कड़कड़ाती ठंड में दूर तक पैदल चलकर दैनिक क्रिया के लिए समस्त खतरे उठाते हुए जाना पड़ता है। कई बार साफ पानी भी उपलब्ध नहीं होता और गंदे पानी के प्रयोग से रोग पकड़ लेते हैं। महिलाओं को मासिक के समय कंडी की राख का प्रयोग करना पड़ता है। रात में औरतों को अपनी सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए दूर के स्थानों को छोड़कर सड़क किनारे बैठना पड़ता है जहां से लोग आते-जाते रहते हैं, तो बार-बार उन्हें उठकर तब तक खड़ा रहना पड़ता है जब तक लोग गुजर न जाएं। मासिक धर्म के समय मुश्किलें और भी बढ़ जाती हैं क्योंकि औरतों को और भी अधिक सतर्कता बरतनी पड़ती है। मूत्र तक को घंटों दबाकर रखना पड़ता है।

2012 के सेंसस के अनुसार, ग्रामीण भारत में केवल 32 प्रतिशत घरों में निजी शौचालय हैं, जबकि पूर्ण स्वच्छता अभियान के तहत भारत को 2012 में अपना लक्ष्य पूरा कर लेना था। पूरे विश्व में लगभग एक खरब लोगों को शौच के लिए बाहर जाना पड़ता है और इनमें से आधे से अधिक यानी करीब 60 करोड़ लोग भारत के हैं। इनमें से आधा हिस्सा महिलाओं का है।

राष्ट्रीय सहारा 04.06.2014

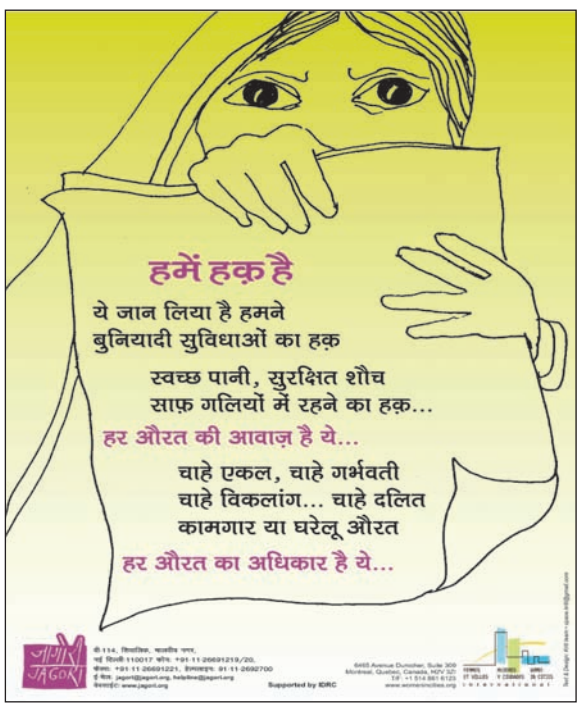


# महिला मानवाधिकार और सुरक्षा ...

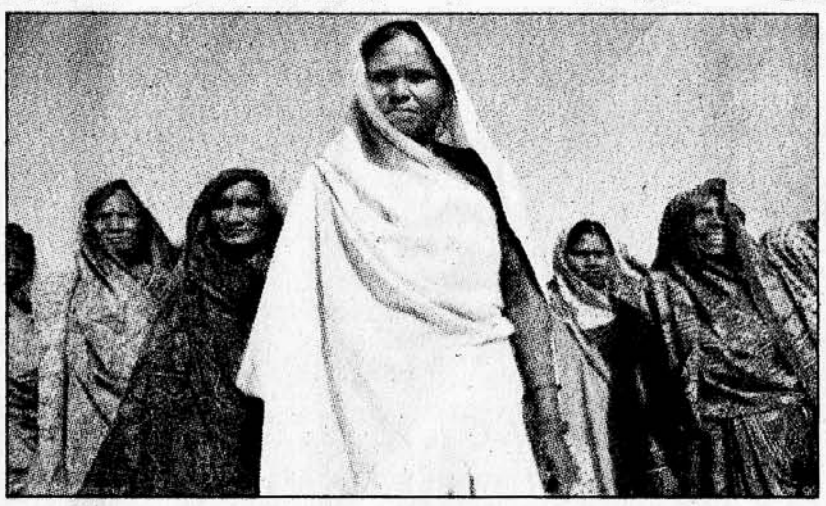

बच्चों का भी 80 प्रतिशत मल बाहर फेंका जाता है, जिससे बीमारी फैलती है और सरकार को खरबों रुपये का घाटा बीमारी और उसके कारण कुपोषण सहित उत्पादकता में ह्रास की वजह से उठाना पड़ता है। ग्रामीण इलाकों में, महिलाओं, खासकर गरीब और दलित औरतों की सुरक्षा संबंधी व्यवस्था नहीं के बराबर है, फिर भी लोगों के करोड़ों कार्य घंटे बलात्कार के मामलों में खर्च होते हैं, जो अन्य उत्पादक कार्यों में लग सकते थे। हरियाणा के हिसार जिले की 4 नाबालिग लड़कियों को शौच हेतु जाते समय अगवा कर लिया गया और उन्हें नशे की दवा देकर बलात्कार का शिकार बनाया गया था। फिर उत्तर प्रदेश में बदायूं जिले में दो नाबालिग बहनें शौच क्रिया के लिए बाहर निकलीं तो यौन हिंसा के बाद मारकर लटका दी गयीं। शासन सख्त कार्रवाई की बात कहता है। फिर भी सवाल उठता है कि इन बेटियों के घरों में 'निर्मल भारत योजना' के तहत शौचालय की व्यवस्था क्यों नहीं हो पायी? क्या यह सिलसिला जारी रहेगा?

अब समय आ गया है कि हर लड़की और हर महिला अपने इस मूल अधिकार के लिए आवाज उठाए और प्रियंका एवं सविता की भांति अपनी सुरक्षा स्वयं सुनिश्चित करे। महिला संगठन इसे युद्ध स्तर पर उठाएं। बिहार के आंकड़े चौंकाने वाले हैं। एक वर्ष में यौन हिंसा के 400 मामले केवल शौचालय के अभाव के कारण घटित होते हैं, जबकि हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, गोवा और पंजाब साफ-सफाई में अव्वल दर्जा हासिल कर चुके हैं। सिक्किम देश का प्रथम निर्मल प्रदेश बना और उसके 163 ग्राम पंचायतों को पुरस्कृत किया गया। पर तमिलनाडु और कर्नाटक जैसे विकसित प्रदेश अभी पीछे चल रहे हैं। 'निर्मल भारत अभियान' को प्रमुख तौर पर महिलाओं को टारगेट करना होगा और सबसे पहले हर स्कूल-कॉलेज में छात्राओं के लिए स्वच्छ शौचालय और मुफ्त सैनेटरी पैड की व्यवस्था करनी होगी। तभी उनका 25 प्रतिशत ड्रापाउट दर घटेगा। निर्मल स्कूल और निर्मल आंगनवाड़ी के लिए आर्थिक प्रोत्साहन की घोषणा जरूर है और गरीबी रेखा के नीचे जीने वालों के लिए 4,600 रुपये प्रति व्यक्ति दी जानी है। प्रत्येक आंगनवाड़ी के लिए 2 लाख का अनुदान और मनरेगा के कार्डधारियों के लिए 900 रुपये का अतिरिक्त आर्थिक प्रोत्साहन दिया जाना है, पर क्यों हम पीछे घिसटते जा रहे हैं, यह महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण का प्रश्न है। शहरी इलाकों में सुलभ इंटरनेशनल ने काम किया है परन्तु महिलाओं के लिए सेवा को मुफ्त नहीं किया गया। संयुक्त राष्ट्र ने विश्व के तमाम देशों को स्वच्छ बनाने का बीड़ा उठाया है तो कीनिया और युगांडा जैसे देशों को भी इस मामले में आगे आना होगा। आज विश्व बैंक और संयुक्त राष्ट्र की फंडिंग के बावजूद पैसा जनता के पास पहुंच नहीं पाता है; जबकि टोटल सैनिटेशन सेल का काम है कि वह जिलों की स्थिति का समय-समय पर मूल्यांकन करे। मकिन्से के अध्ययन के अनुसार, 2022 तक साफ-सफाई पर सार्वजनिक खर्च को दोगुना यानी 10.8 लाख करोड़ हो जाना चाहिए और स्वास्थ्य, जल आपूर्ति और सफाई पर खर्च को 21 से बढ़ाकर 50 प्रतिशत करना होगा वरना भारत सहस्राब्दि विकास लक्ष्य से बहुत पीछे रहेगा और समाज में महिलाएं भी।

राष्ट्रीय सहारा 04.06.2014

# शौचालयों से वंचित रखने की सजा किसे दी जाए

सुभाषिनी अली

**लोकसभा** चुनाव के बाद आए अच्छे दिनों की कहानी के कई पहलू हैं। जिस पहलू पर सबसे अधिक ध्यान दिया जा रहा है, वह है, मीडिया सेक्स में आई अभूतपूर्व उछाल। वह भी पिछले दिनों में कुछ पीछे खिसकने लगी है। लेकिन एक अन्य पहलू, जिस पर काफी टिप्पणियां की जा रही हैं, वह है बलात्कार के मामलों में बढ़ोतरी। उत्तर प्रदेश की घटनाओं ने तो हमारी तमाम संवेदनशीलता को स्तब्ध कर देने का काम किया है।

बलात्कार की कोई भी घटना घटती है, तो उच्च पदों पर आसीन जिम्मेदार लोग फौरन टिप्पणी करना शुरू कर देते हैं। ले-देकर इसका असली मतलब होता है, लड़कियों और औरतों पर उनके साथ होने वाली हिंसा की जिम्मेदारी सौंपना। वे उन्हें कपड़े, रहन-सहन से संबंधित तमाम तरह के उपदेश देने से खुद को रोक नहीं पाते। उनकी मंशा सिर्फ पुरुष समुदाय को ही नहीं, बल्कि खुद को और अपनी सरकारों को भी महिलाओं की सुरक्षा की जिम्मेदारी से बरी करने की है। और फिर तमाम लोग उनकी हां में हां मिलाने लगते हैं कि सरकार आखिर कर भी क्या सकती है! जब समाज ही पतन की तरफ जा रहा है, तो कोई मंत्री इसकी गति को कैसे कम कर सकता है, इत्यादि-इत्यादि!

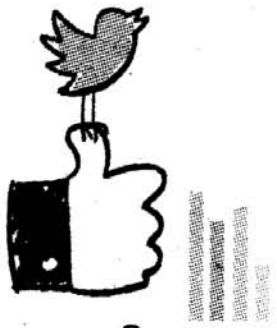

**परिदृश्य**

बलात्कार की घटना घटते ही जिम्मेदार लोग लड़कियों पर टिप्पणियां करने लगते हैं।

सच तो यह है कि न्याय प्रक्रिया को गरीब और कमजोर वर्गों को न्याय देने की दिशा में घुमाने का काम तो सरकारें कर ही सकती हैं। पीड़ित लड़कियों को मदद देने का काम भी उनका है। लेकिन इन्हें करने में सरकारें असमर्थता जता रही हैं। तो क्या गांवों और कस्बों में सरकारें शौचालय बनवाने का काम भी नहीं कर सकती हैं? जब भी बलात्कार पीड़िताओं के वर्णन छपते हैं, तो उनकी गरीबी और सामाजिक स्तर पर उनके निचली सीढ़ियों पर होने की बात सामने आती है, लेकिन इस पर गौर नहीं किया जाता कि हमारे देश में शौचालय का होना, न होना भी जाति और आर्थिक व्यवस्था से जुड़ा हुआ तथ्य है। गांवों और कस्बों में रहने वाले पिछड़ी और दलित जाति के लोग अक्सर गरीब और भूमिहीन होते हैं। सरकारों को उनकी मड़इयों में प्राथमिकता के आधार पर शौचालय बनवाने चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं होता है।

उत्तर प्रदेश के बदायूं जिले का नाम बहुत से लोगों ने एक महीने पहले सुना भी नहीं होगा। पर आज देश तो छोड़िए, विदेशों में भी इस जिले का नाम कुख्यात हो गया है। इस जिले के कटरा सआदतगंज गांव में, जहां वह शर्मनाक घटना हुई, 174 बीपीएल परिवार हैं, लेकिन इनमें से दो घरों में निर्मल शौचालय मौजूद है, वह भी सरकारी आंकड़ों में। इस गांव में कुल 267 एपीएल परिवार हैं, जिनमें से 210 घरों में शौचालय नहीं हैं। गांव में छह स्कूल और तीन आंगनबाड़ी हैं, लेकिन इनमें से एक में भी शौचालय नहीं है। उत्तर प्रदेश में जितनी किल्लत शौचालय की है, उतनी ही बिजली की भी, सो सात बजे से ही घुप्प अंधेरा था।

इस मामले की जांच अब सीबीआई करेगी। हो सकता है कि बलात्कारियों और मामले में लापरवाही दिखाने वाले पुलिस वालों को सजा भी मिल जाए, लेकिन उनके गांव और उनके गांव जैसे हजारों गांवों के गरीबों को शौचालयों से वंचित रखने की सजा किसको दी जाएगी।

अमर उजाला 13.06.2014

# किन्नर होंगे लिंग के तीसरे वर्ग में

## सुप्रीम कोर्ट का फैसला : नौकरियों व दाखिलों में मिलेगा आरक्षण का लाभ

### लक्ष्मी ने जताई खुशी

आज वे खुद को सपूर्ण भारतीय महसूस कर रही हैं। अभी तो केवल राज्य सरकार के साथ काम करना है। सुप्रीम कोर्ट ने तो फैसला दे दिया है। नई सरकार आएगी तो उसके साथ काम करेंगे। सुप्रीम कोर्ट ने जो दरवाजा खोला है, उसे लेकर आगे जाना है। लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी (किन्नरों की नेता)

**नई दिल्ली (एसएनबी)।** एक ऐतिहासिक फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने किन्नरों को तीसरे लिंग के रूप में कानूनी मान्यता प्रदान कर दी। सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र और सभी राज्य सरकारों को निर्देश दिया कि किन्नरों को शिक्षण संस्थानों और सार्वजनिक नौकरियों में सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के रूप में आरक्षण का लाभ दिया जाए।

जस्टिस केएस राधाकृष्णन और एके सीकरी की बेंच ने किन्नरों को देश की मुख्य धारा में लाने का मार्ग प्रशस्त करते हुए सरकारों को इस वर्ग में व्याप्त भय, शर्म, सामाजिक दबाव, अवसाद और सामाजिक कलंक-जैसे भाव दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाने का भी निर्देश दिया। बेंच ने कहा कि किन्नर, हिजड़ा, कोठी, अरावनी, जोगप्पा, शिव शक्ति आदि के नाम के पहचान जाने वाले इस वर्ग के साथ पक्षपात अकल्पनीय है और संविधान के तहत पुरुष और महिलाओं को प्राप्त सभी अधिकारों की तरह ही उनके अधिकारों करने के संरक्षण की आवश्यता है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि इस वर्ग पर हमारे समाज में हो रहा पक्षपात अकल्पनीय है और गुणसूत्र संबंधी सेक्स, लिंग की भूमिका आदि के बावजूद उनके अधिकारों की रक्षा करनी होगी, इसलिए हम हिजड़ों और किन्नरों को संविधान के भाग तीन और संसद तथा राज्य विधानमंडलों द्वारा बनाए कानूनों में प्रदत्त उनके अधिकारों की रक्षा के लिए तीसरे लिंग के रूप में मानने की घोषणा करते हैं।

**किन्नरों के प्रति अछूतों जैसा व्यवहार :** बेंच ने कहा कि हम केंद्र और राज्य सरकारों को निर्देश देते हैं कि वे उन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के नागरिक माने और उन्हें शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश तथा सार्वजनिक नौकरियों में सभी प्रकार के आरक्षण का लाभ दें। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि हमारा समाज अकसर ही किन्नर समुदाय का उपहास उड़ाता है और उनके प्रति अपशब्दों का इस्तेमाल करता है और रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड, स्कूल, कार्यस्थल, मॉल, थिएटर व अस्पताल-जैसे सार्वजनिक स्थलों पर उन्हें एक किनारे करके उनके प्रति अछूतों जैसा व्यवहार किया जाता है। बेंच ने कहा कि किन्नर या हिजड़े शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पुरुष नहीं हैं और वे महिला भी नहीं हैं, हालांकि वे महिलाओं की तरह हैं, लेकिन उनमें स्त्रीयोचित प्रजनन अंग नहीं है और न ही मासिक होता है।

**किन्नर के अधिकारों के बारे में कोई कानून नहीं :** सुप्रीम कोर्ट ने विभिन्न धर्म ग्रंथों का जिक्र करते हुए कहा कि ऐतिहासिक रूप से किन्नरों ने भूमिका निभाई है, लेकिन उपनिवेशवाद के दौरान स्थिति में व्यापक बदलाव आया और ब्रिटिश हुक्मरानों ने एक तरह से उन्हें अपराधी घोषित कर दिया। अदालत ने कहा कि दुर्भाग्यवश किन्नर समुदाय के अधिकारों के बारे में देश में कोई कानून नहीं है। बेंच ने कहा कि नेपाल और पाकिस्तान सहित अनेक देशों में किन्नरो के अधिकारों को मान्यता दी गई है और शासन से उन्हें संरक्षण मिलता है। अदालत ने कहा कि इनके साथ दुव्यर्वहार, बलात्कार, गुदा मैथुन और मुखमैथुन, सामूहिक बलात्कार और उन्हें नग्न करने -जैसी घटनाएं होती हैं और ऐसी घटनाओं के समर्थन में भरोसेमंद आंकड़े और सामग्री हैं। अदालत ने कहा कि किन्नरों को तीसरे लिंग के रूप में मान्यता देकर यह अदालत सिर्फ कानून के शासन को लागू नहीं कर रहा है, बल्कि उस वर्ग को भी न्याय दिला रहा है जो अभी तक अपने नैसर्गिक और संवैधानिक अधिकारों से वंचित था।

**लिंग के आधार पर नहीं किया जा सकता पक्षपात :** सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि लिंग की पहचान सेक्स का अनिवार्य हिस्सा है और किसी भी नागरिक के साथ इस आधार पर पक्षपात नहीं किया जा सकता है। शीर्ष अदालत ने यह भी स्पष्ट किया कि किन्नरों को भी आपरेशन के बाद पुरुष या महिला के रूप में मान्यता का अधिकार है। अदालत ने कहा कि पंजाब सरकार सभी किन्नरों को पुरुष मानती है जो कानूनी दृष्टि से उचित नहीं है। बेंच ने हाल ही के उस अध्ययन का जिक्र किया जिसमें संकेत दिया गया है कि हिजड़ों और किन्नर महिलाओं में एचआईवी सबसे अधिक है। अदालत ने केन्द्र और राज्य सरकारों को निर्देश दिया कि इस वर्ग के लिए अलग से एचआईवी निगरानी केंद्र शुरू किए जाएं। अदालत ने कहा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 377 का पुलिस और दूसरे प्राधिकारियों द्वारा इनके खिलाफ दुरुपयोग किया जाता है।

राष्ट्रीय सहारा 16.04.2014

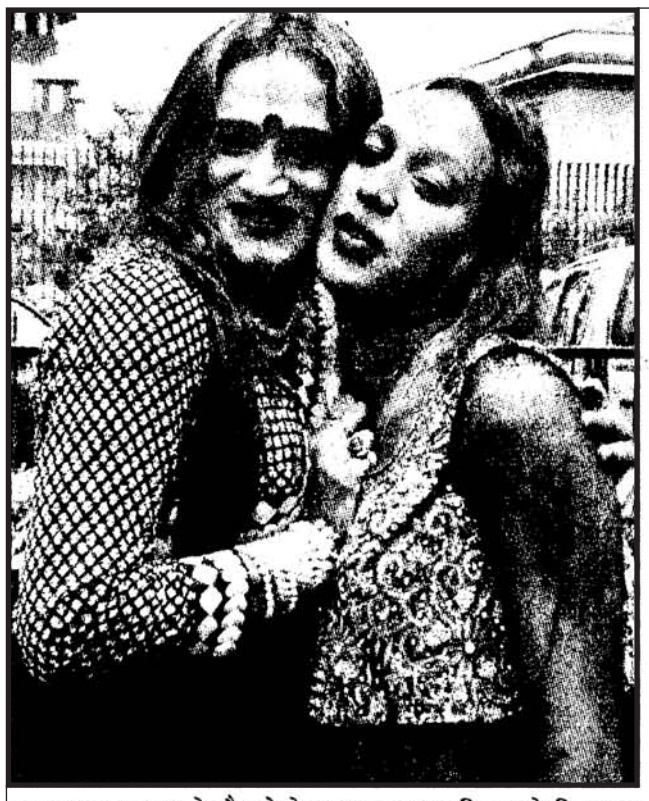

उच्चतम न्यायालय के फैसले के बाद एक अन्य किन्नर से लिपटकर प्रसन्नचित्त किन्नर अधिकार कार्यकर्ता लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी (बाएं)।

'संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21 के तहत ट्रांसजेंडर देश के नागरिक हैं और शिक्षा, रोजगार एवं सामाजिक स्वीकार्यता पर उनका समान अधिकार है।'- सुप्रीम कोर्ट

### आरक्षण और अन्य राहतें

- किन्नरों को शिक्षण संस्थानों में दाखिले के अलावा नौकरी 'थर्ड जेंडर' के आधार पर दी जाएंगी
- केंद्र को सुप्रीम कोर्ट का निर्देश है कि वह किन्नरों को सामाजिक और आर्थिक तौर पर पिछड़ा माने।
- किन्नरों को ओबीसी माना जाएगा और उसी आधार पर शिक्षा और नौकरियों के क्षेत्र में आरक्षण दिया जाएगा
- किन्नरों के लिए केंद्र और राज्य सरकारों को समाज कल्याण से जुड़े कार्यक्रम लाने होंगे। इनके बारे में लोगो के बीच सामाजिक चेतना के कार्यक्रम भी चलाने होंगे
- राज्यों को किन्नरों की विशेष जरूरतों के मद्देनजर सार्वजनिक शौचालय और मेडिकल सेंटर बनवाने चाहिए

### भारत में क्या है स्थिति

**चुनाव आयोग ने भी थर्ड जेंडर का दर्जा दिया था**

इससे पहले निर्वाचन आयोग ने भी 2014 के लोकसभा चुनाव के संदर्भ में किन्नरों को थर्ड जेंडर का दर्जा देकर उनको एक नई पहचान दी।

### तमिलनाडु ने की थी पहल

- भारत में तमिलनाडु ही एक ऐसा राज्य है, जहां ट्रांसजेंडर के लिए एक अलग कॉलम बनाया गया है। तमिलनाडु में मिले इस अधिकार का नतीजा भी दिखा।
- 2013 में 23 साल की स्वप्ना को तमिलनाडु लोक सेवा आयोग की परीक्षा में बैठने का आदेश कोर्ट ने दिया था।

# ट्रांसजेंडर समुदाय की बड़ी जीत

मुद्दा

**सिद्धार्थ शंकर गौतम**

देश के शीर्ष न्यायालय ने मानवीय आधार पर एक महत्वपूर्ण और बड़ा निर्णय सुनाते हुए हिजड़ों या ट्रांसजेंडर्स के लिए तीसरे लिंग का प्रावधान कर दिया है। यानी हिजड़े लिंग के तौर पर महिला और पुरुष के बाद तीसरी श्रेणी में गिने जाएंगे। इससे पहले उन्हें कानूनी तौर पर मजबूरी में अपना जेंडर पुरुष या महिला बताना पड़ता था। गौरतलब है कि अब तक शोषित और उपेक्षा का शिकार हिजड़ा वर्ग सदियों से अपनी अलग पहचान का मोहताज रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने इसके साथ ही ट्रांस जेंडर्स को सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर तबके के रूप में पहचान करने के लिए कहा है।

सुप्रीम कोर्ट ने संविधान की धारा 14, 16 और 21 का हवाला देते हुए कहा कि ट्रांसजेंडर देश के सामान्य नागरिक हैं और शिक्षा, रोजगार एवं सामाजिक स्वीकार्यता पर उनका बराबर का अधिकार है। न्यायालय ने केंद्र एवं राज्य सरकारों को निर्देश दिए कि वे पर्याप्त स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा एवं रोजगार के अवसर प्रदान कर इस समुदाय को मुख्यधारा में लाने के लिए जरूरी कदम उठाएं। न्यायमूर्ति के एस राधाकृष्णन और न्यायमूर्ति ए के सीकरी की पीठ ने समाज में किन्नरों के साथ होने वाले भेदभाव एवं उनके उत्पीड़न पर चिंता व्यक्त की और उनके कल्याण के लिए कई निर्देश दिए। न्यायालय ने कहा कि पहले समाज में हिजड़ों का सम्मान किया जाता था लेकिन आज के दौर में स्थिति बदल गई है और अब उन्हें भेदभाव एवं उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। पीठ ने कहा कि पुलिस एवं अन्य प्राधिकारी वर्ग द्वारा अक्सर भारतीय दंड संहिता की धारा 377 का उनके खिलाफ दुरुपयोग होता रहता है तथा उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति संतोषजनक नही है। वे समाज का मुख्य हिस्सा हैं और सरकार को उन्हें मुख्यधारा में लाने के लिए कदम उठाने चाहिए।

उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा दायर जनिहत याचिका की सुनवाई के दौरान यह आदेश सुनाया है। एनएएलएसए ने अदालत से अपील की थी कि ट्रांसजेंडर को लिंग के तीसरे वर्ग के रूप में मान्यता देकर उन्हें अलग पहचान मिलनी चाहिए। पीठ के अनुसार तीसरे लिंग को ओबीसी माना जाएगा। इन्हें शिक्षा और नौकरी में ओबीसी के तौर पर रिजर्वेशन भी दिया जाएगा। पीठ ने यह भी कहा कि अगर कोई अपना सेक्स चेंज करवाता है, तो उसे उसके नए सेक्स की पहचान मिलेगी और इसमें कोई भेदभाव नही किया जा सकता।

मुख्य रूप से शादी-ब्याह या अन्य मांगलिक अवसरों पर या किसी घर में बच्चा पैदा होने पर उसे बधाई देने के नाम पर नाच-गाकर या अन्य किसी प्रकार के नेग द्वारा जीवन-यापन करने वाला यह मानव समूह हमेशा से ही समाज की नजरों में तिरस्कृत और उपेक्षित रहा है। यहां तक कि वर्गो की राजनीति करने वाले राजनेताओं के लिए भी यह वर्ग कभी महत्वपूर्ण वोट बैंक

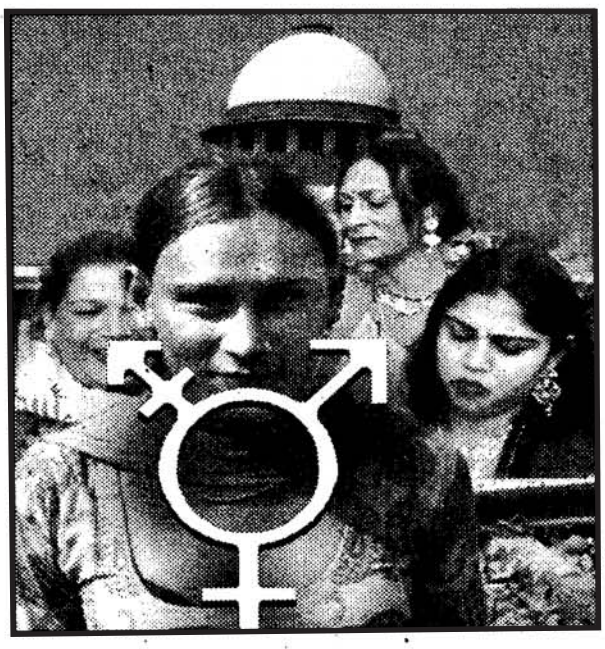

नही बन पाया। खैर, बाट बैंक यह बनता भी कैसे! इसी साल फरवरी में चुनाव आयोग ने वोटिंग के लिए रजिस्टर्ड हिजड़ों की संख्या का खुलासा किया था। आयोग के मुताबिक, देश भर में कुल 28,241 लोगों ने ही इस बारे में जानकारी दी। 81 करोड़ वोटरों वाले इस देश में यह संख्या बेहद कम है। वास्तविकता यह है कि संख्या बल के आधार पर यदि इस वर्ग का अच्छा-खासा वोट बैंक होता तो शायद इन्हें अपनी पहचान का संकट नहीं होता और तमाम राजनीतिक दल अपने लाभ के लिए इनके बारे में पैरवी कर रहे होते। हालांकि 2011 की जनगणना में किन्नरों को भी शामिल करने का फैसला किया गया था। इसके तहत किन्नरों को अलग कैटिगरी में गिनने का फैसला लिया गया। 'अदर्स' कैटिगरी में इनकी गिनती करने के फैसले का इस समुदाय के लोगों के अलावा तमाम सामाजिक कार्यकर्ताओं ने भी खुले दिल से स्वागत किया। क्योंकि यह पहल कहीं न कहीं उनके अस्तित्व और मानवाधिकारों की पहल थी। हिजड़ों को अलग कैटिगरी में गिनने से जुड़े टेक्निकल एडवाइजरी कमेटी के सुझावों को केंद्र सरकार ने मंजूरी दी थी। कुछ साल पहले रजिस्टर जनरल ऑफ इंडिया ने एक आरटीआई के जबाव मे इस बारे में जानकारी दी थी।

वैश्विक स्तर पर देखें तो अमेरिका में करीब सात लाख ट्रांसजेंडर्स हैं। बीते मार्च महीने में ही यहां ह्वाइट हाउस में एक ऑनलाइन याचिका दायर की गई, जिसमें ट्रांसजेंडर्स को अलग से नई सामाजिक पहचान देने की वकालत की गई। लेकिन अमेरिका में हिजड़ा समुदाय को लेकर अब तक थर्ड जेंडर जैसी कोई व्यवस्था फिलहाल नही है। ऑस्ट्रेलिया में भी कुछ दिन पहले ही हिजड़ों को बतौर थर्ड जेंडर वरीयता देने का आदेश जारी हुआ है। दिसम्बर 2007 में नेपाल के सुप्रीम कोर्ट ने आदेश दिया कि देश के लैंगिक अल्पसंख्यकों को आम नागरिकों की तरह ही अधिकार दिए जाएं। 2009 में पाकिस्तान के सुप्रीम कोर्ट ने हिजड़ों को मतगणना में शामिल करने का आदेश दिया था। इस मायने में भारत हिजड़ों को थर्ड जेंडर के तौर पर मान्यता देने वाला दुनिया का पहला देश बन गया है।

यह तो समय ही बताएगा कि किन्नरों के पक्ष में सुप्रीम कोर्ट के हालिया निर्णय का उनके सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक भविष्य पर क्या सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा किन्तु ट्रांसजेंडर्स को सुप्रीम कोर्ट के माध्यम से मिले इस हक के संबंध में अहम भूमिका निभाने वाली लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी हिजड़ों के भविष्य को लेकर जरूर आशान्वित हैं। उन्होंने ट्विटर पर अपनी खुशी जाहिर की है। महाराष्ट्र के ठाणे में जन्मी लक्ष्मी ने मीठीबाई कॉलेज से ग्रेजुएशन किया है। वह प्रशिक्षित क्लासिकल डांसर हैं। इसके अलावा उन्होंने भरतनाट्यम में पोस्ट ग्रेजुएशन की डिग्री भी ली है। लक्ष्मी ने कई स्टेज शो और म्यूजिक एलबमों के लिए कोरियोग्राफी भी की है। अपने इस हुनर के अलावा लक्ष्मी 'बिग बॉस सीजन-5' में भी शामिल हो चुकी हैं, साथ ही 'सच का सामना', 'दस का दम' और 'राज पिछले जन्म का' जैसे टीवी कार्यक्रमों में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करवा चुकी हैं।

लक्ष्मी पहली ऐसी ट्रांसजेंडर हैं जो संयुक्त राष्ट्र में एशिया प्रशांत का प्रतिनिधत्व कर चुकी हैं। वह एलजीबीटी वर्ग के लिए काम कर रहे कई एनजीओ के साथ भी जुड़ी हैं। 2002 में वह दक्षिण एशिया में हिजड़ों के लिए काम करने वाले पहले एनजीओ (दाई) की अंध्यक्ष बनीं। उनकी लड़ाई आज किन्नर समुदाय के लिए बड़ी जीत लेकर आई है।

राष्ट्रीय सहारा 17.04.2014

# सियासत के हाशिये पर आधी आबादी

मुद्दा

नीकी नैनसी

सोलहवीं लोकसभा के चुनावों का दौर अपने अंतिम पड़ाव की ओर अग्रसर है। सरकार बनाने को लेकर हर तरफ से और अलग-अलग तरह के कयास लगाए जा रहे हैं। बयानबाजिंयों मे कोई कमी नहीं है। आखिरी दौर के मतदान के अभी दो चरण बाकी हैं, इसलिए राजनीतिक दल मतदाताओं की तरफ पूरे जोशो-खरोश से मुखातिब हैं और मतदाताओं को अपनी-अपनी तरह से लुभा रहे हैं। लेकिन आम दिनों में महिला अधिकारों से लेकर विधायिका में महिलाओं के लिए तैंतीस फीसद आरक्षण के मसले पर लगातार शोर मचाने वाले लगभग सभी सामाजिक-राजनीतिक समूहों में एक तरह की चुप्पी छायी है या फिर इस सवाल की अनदेखी का आलम है। राजनीतिक प्रशिक्षण के पैमाने पर क्योंकि कोई ठोस पहल खुद राजनीतिक दलों की ओर से नहीं होती है और इसमें महिलाएं और इनसे संबंधित मुद्दे आमतौर पर हाशिये पर रहते हैं, इसलिए आज भी महिलाओं की भागीदारी को लेकर उतने प्रश्न सामने नजर नहीं आ रहे हैं, जितने सवाल हम विकास बनाम आर्थिक वृद्धि, सांप्रदायिकता बनाम धर्मनिरपेक्षता और व्यक्तिगत राजनीति में उठते देख रहे हैं।

ऐसे में दो बातों पर गौर किया जाना चाहिए। पहला यह कि इस बार चुनाव में मतदाताओं की भागीदारी के हिसाब से महिलाओं का मोर्चा काफी बुलंद है। भारत जैसी लोकतांत्रिक प्रणाली में महिलाओं को चुनाव में मतदान का अधिकार 1930 से मिला हुआ है। लेकिन इस आम चुनाव तक आते-आते उनका मत पुरुषों के बराबर ही महत्त्वपूर्ण हो चला है। इस बात की पुष्टि जनसंख्या और चुनाव आयोग के आकलन में भी जाहिर होती है। 2011 की जनगणना के हिसाब से देश की 49 प्रतिशत की आबादी महिलाओं की है। यह भारत जैसे लोकतंत्र और यहां के राजनीतिक परिदृश्य में बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है। चुनाव आयोग के हिसाब से महिलाएं अपने मताधिकार को लेकर काफी जागरूक भी हुई हैं। उनकी यह भागीदारी और मजबूत तौर पर 2010 में हुए प्रांतीय विधानसभाओं के चुनाव से ही सामने आ रही है। उदाहरण् के तौर पर 2010 मे हुए बीस राज्यों के विधानसभा चुनावों में से सोलह राज्यों में महिलाओं का मतदान प्रतिशत पुरुषों से ज्यादा रहा। दिलचस्प यह है कि उत्तर प्रदेश और बिहार, जो लोकसभा चुनाव में किसी पार्टी के सत्ता निर्धारण में सबसे बड़े कारक क्षेत्र माने जाते हैं, कारण, यूपी से 80 और बिहार से 40 लोकसभा सांसद चुने जाते हैं, के विधानसभा चुनाव में महिलाओं ने ज्यादा मतदान किए! 2012 में उत्तर प्रदेश में तकरीबन 60 प्रतिशत से ज्यादा और बिहार में 2010 में 55 प्रतिशत तक महिलाओं ने मतदान में हिस्सा लिया। जबकि पुरुषों का मतदान इन दोनों प्रदेशों में 58 और 51 प्रतिशत ही रहा। वहीं गुजरात में, जहा मोदी अपने तथाकथित सामाजिक कल्याण का ढिंढोरा पीटते दिख रहे है, 2012 के विधानसभा चुनाव मे महिलाओं ने (69 प्रतिशत) पुरुषों (73 प्रतिशत)

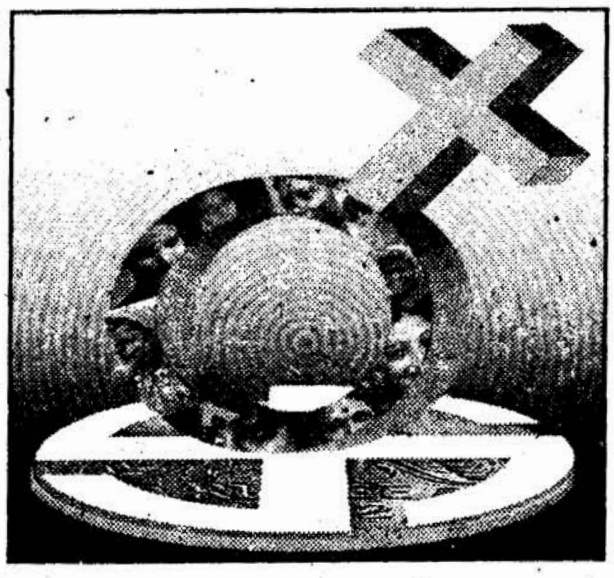

के मुकाबले कम मतदान किया।

दूसरी बात, जो ठीक इसके विपरीत है, वह है महिला प्रतिनिधियों की भारत के राजनीतिक पटल पर लगातार घटती भागीदारी। वर्तमान लोकसभा में महज 60 महिलाएं हैं जो कुल सदस्यों का केवल ग्यारह प्रतिशत ही है। इससे आगे अगर इसी चुनाव में महिला प्रत्यांशियों की संख्या पर नजर डालें तो स्थिति संतोष करने लायक तो नहीं ही है। कुल 5380 प्रत्याशियों में सिर्फ 402, यानी सात प्रतिशत ही महिला उम्मीदवार मैदान में हैं। इससे बेहतर स्थिति तो पिछले आम चुनाव में थी। तब यह संख्या 556 थी। यह वृद्धि उनकी जनसंख्या, शिक्षा, जागरूकता आदि आयामों के हिसाब से कहीं से भी संतोषजनक नही कही जा सकती है। इससे भी ज्यादा सोचने वाली बात यह है कि इन 402 महिला प्रत्याशियों मे एक तिहाई निर्दलीय उम्मीदवार हैं। राजनीतिक दलों में आम आदमी पार्टी ने सबसे ज्यादा 39 महिला प्रत्याशियों को, कांग्रेस ने 33, भाजपा ने 20 महिलाआं को चुनाव मैदान में उतारा है। महिला नेतृत्व वाली पार्टियों ने तो और भी कम जगह दी है। मसलन, जयललिता के नेतृत्व वाली एआइडीएमके ने सबसे कम 4, तृणमूल ने 12 और बसपा ने 16 महिला प्रत्याशी मैदान में उतारे है। यहां यह भी एक दिलचस्प बात है कि इन सभी महिला प्रत्याशियों में 53 प्रतिशत से ज्यादा स्नातक या उससे ज्यादा की श्रेणी में शिक्षित है, जबकि पुरुषों में ये आंकड़ा 48 प्रतिशत का है। वहीं घोषित संपत्ति के मामले में पुरुष आगे हैं।

वैश्विक स्तर पर भी तुलना करें तो संसद में महिलाओं की संख्या के संदर्भ में रवांडा सबसे पहले स्थान पर है, जबकि भारत 108वें स्थान पर। पड़ोसी देश चीन 56वें, पाकिस्तान 66वें व बांग्लादेश 71वें स्थान पर है। इस लिहाज से देखें तो अपने देश में महिला प्रतिनिधियों का ठहराव या उनकी गिरती भागीदारी चिंता का विषय होना चाहिए। लेकिन तस्वीर कुछ यों बन रही है कि महिलाओं की आधे से अधिक आबादी वाले इस देश में उनकी प्रशासन और नीति निर्धारक निकायों में संतोषजनक और प्रभावी भागीदारी नहीं है। महिला सशक्तिकरण के मसले पर राजनीतिक दल भले कितना भी पहाड़ा पढ़ें, लेकिन सच यही है कि इस ओर किसी राजनीतिक दल का या तो ध्यान नहीं गया या फिर वे गंभीरता से सोचना नहीं चाह रहे। वे भी उन्हीं चेहरों को जनता के सामने करते हैं जो जनता की भीड़ को आकर्षित कर सकें।

चुनावी मुद्दों के केंद्र में महिलाओं की चर्चा होती तो है, लेकिन आमतौर पर वह नेताओं के निजी संबंधों या कुछ खास मामलों तक ही सीमित होती है यानी उसका व्यापक महत्त्व नही होता। इसके बरक्स चुनाव में महिला प्रत्याशियों और सामाजिक-राजनीतिक जीवन में उनकी भागीदारी को लेकर कोई प्रतिस्पर्धी बहस मौजूद नहीं है। कांग्रेस बार-बार अपने चुनाव घोषणा पत्रों मे लोकसभा और राज्यसभा में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण सुनिश्चित करने का दावा करती आई है, लेकिन इसे पारित कराने में हमेशा नाकाम रही है। इस चुनाव में बाकी मुद्दों के साथ-साथ अनिवार्य तौर पर महिलाओं की भागीदारी को लेकर भी सवाल उठने चाहिए और न केवल महिलाओं, बल्कि सभी तबकों की ओर से इस पर चर्चा होनी चाहिए। अपनी-अपनी पार्टी के लिए विज्ञापन की तरह खूबसूरत चेहरों की तलाश से आगे बढ़ कर सोचना भी राजनीतिक और जनतांत्रिक संस्थाओं की जिम्मेदारी है।

राष्ट्रीय सहारा 02.05.2014

# सियासत में महिलाएं

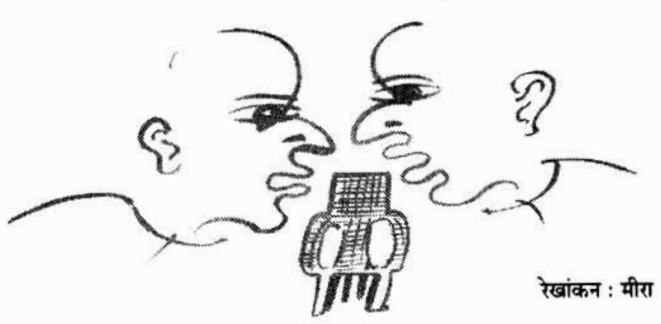

रेखांकन : मीरा

आधी अबादी

सुषमा वर्मा

विधानसभा चुनावों में तो महिला और पुरुष मतदाताओं की हिस्सेदारी अब लगभग बराबरी पर आ चुकी है लेकिन आम चुनाव में दोनों के मत फीसद में छह से आठ फीसद का अंतर है। इसकी वजह क्या है ? क्या यह कि विधान सभा और निकाय चुनावों में मुद्दे स्थानीय होते हैं, जबकि आम चुनाव में राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय ? हाल ही में किए गए नेशनल कौसिल आफ अप्लाइड इकनामिक्स रिसर्च (एनसीएईआर) के भारतीय मानव विकास सर्वेक्षण (आईएचडीएस) की रिपोर्ट को देखें तो इस सवाल का जवाब मिलता है। देश भर के 42 हजार घरों से आर्थिक, सामाजिक और विकास संबंधी आंकड़े जुटाकर यह रिपोर्ट तैयार की गई है। पता चलता है कि तेज आर्थिक विकास के दौर (2004-05 से 2011-12) में भी देश की आधी आबादी की जिंदगी को सदियों के ठहराव की जकड़न से मुक्ति नहीं मिल पाई।

बीमार पड़ जाने पर आज भी 81 फीसद औरतों को डॉक्टर के पास जाने के लिए घर के आदमियों से इजाजत लेनी पड़ती है, 18 फीसद को घर के पास किराने की दुकान से मिर्च-मसाले तक खरीदने की अनुमति नहीं है, 50 फीसद अकेले बस या रेल से सफर नहीं कर सकतीं, 60 फीसद को परदा या घूंघट करना पड़ता है, 41 फीसद से उनकी शादी के बारे में राय तक नहीं ली जाती और मामूली घरेलू सामान की खरीद में 75 फीसद का कोई दखल नहीं होता। जब औरतों पर इतने बंधन हैं फिर उनसे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय समस्याओं पर कोई राय रखने की अपेक्षा कैसे की जा सकती है ?

सर्वेक्षण में आय और व्यय, शिक्षा और स्वास्थ्य और जाति, धर्म और लिंग के आधार पर परिवारों को टटोला गया। निष्कर्ष यह है कि तेज आर्थिक विकास के दौर में महिलाओं की स्थिति में सुधार का दावा करने वाली जमात के मुंह पर करारा तमाचा लगा है। 2004-05 से 2011-12 के बीच नौकरी और कामकाज के मोर्चे पर औरतों की स्थिति सुधरने के बजाय खराब ही हुई। 2005 में ग्रामीण इलाकों में 58 फीसद महिलाएं काम-धंधा कर अपने घर की आय में योगदान देती थीं। 2012 में कामकाजी औरतों की संख्या में चार फीसद की कमी आ गई। गिरावट का क्रम शहरों और कस्बों में भी रहा। 2005 में जहां 23 फीसद शहरी महिलाओं की श्रम में सक्रिय भागीदारी थी, वहां 2012 में 20 फीसद रह गई।

कृषि क्षेत्र में बरसों से महिलाओं की भारी थी, वहां भी उनका हिस्सा घटता जा रहा है। 2005 में खेती-बाड़ी में 91 फीसद महिला श्रमिक थीं, 2012 आते-आते उनकी संख्या गिरकर 86 फीसद रह गई। सर्वेक्षण से यह भी पता चलता है कि आर्थिक दृष्टि से संपन्न या शिक्षित परिवारों में भी महिलाओं के प्रति दकियनूसी दृष्टिकोण हावी है। 2001 और 2011 की जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि इस दस वर्ष की अवधि में देश में साक्षरता और प्रति व्यक्ति आय में खासी वृद्धि हुई। इसके बावजूद महिलाओं की संख्या कम होती चली गई। 2001 में जहां 1000 पुरुषों के मुकाबले देश में 927 महिलाएं थीं वहीं दस साल बाद उनकी तादाद घटकर 919 रह गई। कन्या भ्रूण हत्या के कलंक से मुक्ति नहीं मिल पाई है।

इक्कीसवीं सदी में भी महिलाओं को घूंघट जैसी कुप्रथा को ढोना पड़ रहा है। हिंदू समाज की उच्च जातियों में 59 फीसद महिलाओं को घूंघट या सिर ढककर रहना पड़ता है। मुसलिम समाज की 83 फीसदी औरतों पर परदे या बुर्के की बंदिश है। उत्तर भारत के राजस्थान, बिहार, हरियाणा और मध्य प्रदेश जैसे सूबों में महिलाओं का मुंह उघाड़कर रहना मानो अपराध है।

आर्थिक प्रगति होने के बावजूद कोई बड़ा बदलाव नहीं आया है। बड़े दल भले ही महिलाओं को बराबरी का दर्जा देने और लोकसभा और विधानसभाओं में 33 फीसद आरक्षण देने की वकालत करते हों, लेकिन उनकी कथनी और करनी में भारी भेद है। महिलाओं को टिकट देने के मामले में अधिकांश दलों का रवैया एक सा है। हर दल सिर्फ जीतने वाले घोड़े पर दांव लगाना चाहता है, सत्ता में महिलाओं से साझीदारी करना किसी पार्टी को मंजूर नहीं है। अधिकांश पाटियां महिलाओं की राजनीतिक चेतना को समझने में नाकाम रही हैं। इसीलिए महिला को टिकट देने में उनका हाथ तंग रहता है। विधानसभा और लोकसभा चुनाव में बड़े दल बहुत कम महिलाओं को टिकट देते हैं। आज तक संसद में महिला सांसदों की संख्या 15 फीसद भी नहीं पहुंच पाई है। महिलाओं के सशक्तीकरण और बराबरी की बात करने वाले दलों की असलियत टिकट वितरण के समय सामने आ जाती है।

अक्सर महिला प्रत्याशी के खिलाफ महिला को ही मैदान में उतारा जाता है। जाहिर है कि दोनों में से एक ही महिला चुनाव जीत पाती है। राजनीतिज्ञों की इस लोमड़चाल में फंसकर समाज के लिए वास्तव में काम करने वाली बहुत सी महिलाएं संसद या विधानसभा में आने से वंचित रह जाती हैं। आज चुनाव जीतने के लिए पैसे, बाहुबल या जाति के सहारे की जरूरत है। इसीलिए सभी पाटियां महिलाओं को टिकट देने में आनाकानी करती हैं। जिन महिलाओं को टिकट मिलता है वे ज्यादातर राज पारिवारों या राजनीति में जमे-जमाएं नेताओं के घरानों से आती हैं। उनके पीछे पिता या पति का हाथ होता है। टिकट बांटते समय हर दल अपने प्रत्याशी की जीत की संभावना टटोलता है। संसद और विधानसभाओं में महिलाओं के आरक्षण का मुद्दा सुनियोजित तरीके से पृष्ठभूमि में धकेल दिया गया है। ❑

sushma_lalit@yahoo.co.in

जनसत्ता 13.04.2014

# एक कारगर पहल

## आधी आबादी

जाहिद खान

समाज के कमजोर वर्ग की महिलाओं को कम ब्याज दर पर कर्ज देकर उन्हें आर्थिक तौर पर स्वावलंबी बनाने के मकसद से केंद्र सरकार ने देश में महिला बैंक शुरू किया है। इस बैंक की पहली शाखा महाराष्ट्र के मुंबई में खोली गई। एक हजार करोड़ रुपए के शुरुआती कोष के साथ शुरू किया गया यह बैंक पूर्णतया महिलाओं द्वारा और महिलाओं के लिए संचालित है। बैंक, महिला सशक्तीकरण के साथ सभी प्रकार की सेवाएं प्रदान देगा। अभी इसकी सात शाखाएं गुवाहाटी, कोलकाता, चेन्नई, मुंबई, अमदाबाद, बैंग्लूरु और लखनऊ में शुरू की गई हैं। निकट भविष्य में सरकार का इरादा इस बैंक की शाखाएं पश्चिम भारत, उत्तर भारत और दक्षिण भारत सहित सभी जगह खोलने की है। 2014 मार्च के अंत तक बैंक की शाखाओं की संख्या 25 होगी। महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण की दिशा में एक अहम कदम है, जिसका कि हमें स्वागत करना चाहिए। वित्त और बैंकिंग सुविधा की पहुंच से न केवल महिलाओं को सशक्त बनाने में मदद मिलेगी, बल्कि विकास के सामाजिक आधार को भी व्यापकता हासिल होगी।

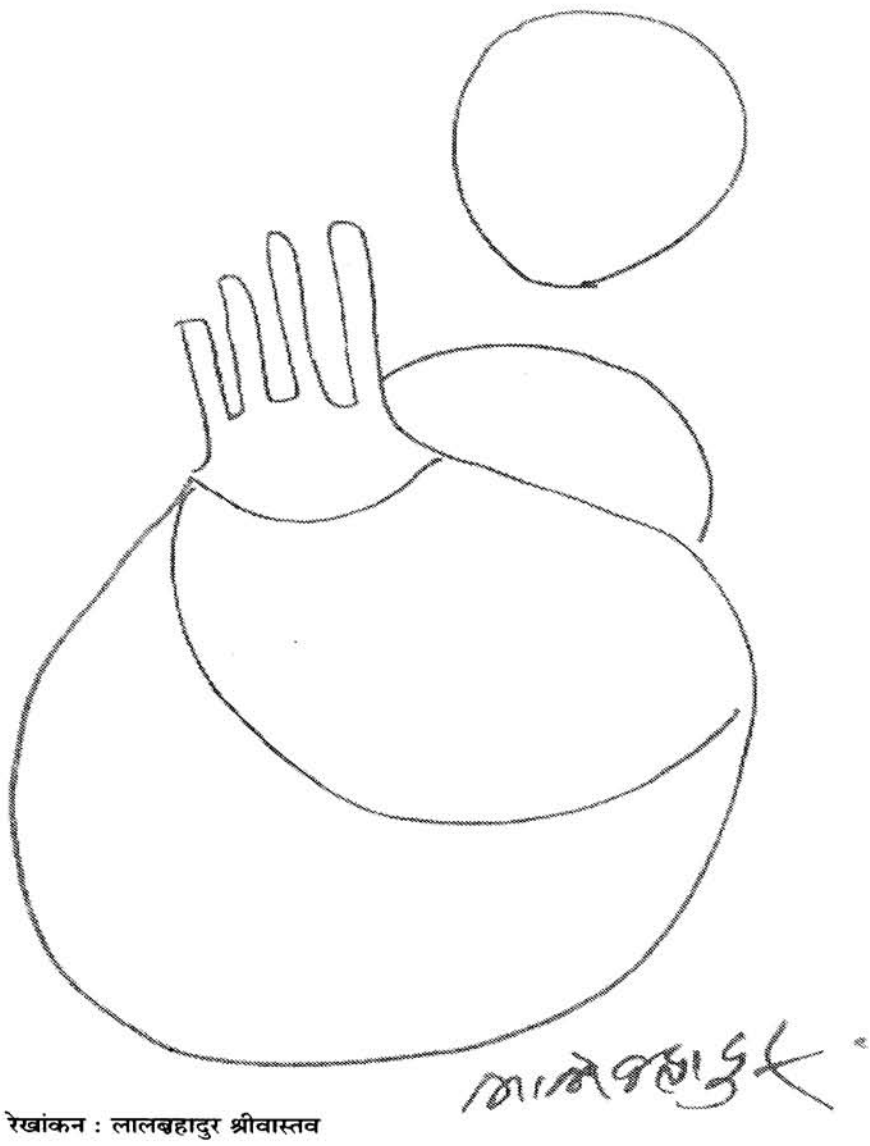



रेखांकन : लालबहादुर श्रीवास्तव

केंद्र सरकार ने अपने बजट भाषण में भारतीय महिला बैंक शुरू करने की घोषणा की थी, जो अब जाकर पूरी हो गई है। महिला बैंक के निदेशक मंडल में आठ महिला सदस्यों को शामिल किया गया है। देश में सार्वजनिक क्षेत्र का यह पहला बैंक होगा, जिसके निदेशक मंडल के अध्यक्ष समेत सभी सदस्य महिलाएं हैं। निदेशक मंडल में जहां एक बड़े उद्योग समूह गोदरेज की तान्या दुबाश शामिल हैं, तो वहीं राजस्थान के एक गांव की सरपंच छवि राजावत भी। यानी निदेशक मंडल में सभी वर्ग की महिलाओं का प्रतिनिधित्व है। बैंक सिर्फ महिलाओं के लिए अकेले नहीं होगा, बल्कि इसमें सभी को सुविधाएं मिलेंगीं।

**केंद्र सरकार ने अपने बजट भाषण में भारतीय महिला बैंक शुरू करने की घोषणा की थी, जो अब जाकर पूरी हो गई है। महिला बैंक के निदेशक मंडल में आठ महिला सदस्यों को शामिल किया गया है। देश में सार्वजनिक क्षेत्र का यह पहला बैंक होगा, जिसके निदेशक मंडल के अध्यक्ष समेत सभी सदस्य महिलाएं हैं।**

इनमें महिलाएं काम करेंगी और उपभोक्ता भी ज्यादा से ज्यादा महिलाएं ही होंगी। बैंक का मुख्य उद्देश्य महिलाओं का सशक्तीकरण करना है। जहां तक कर्ज का सवाल है, इन बैंकों में ज्यादा से ज्यादा कर्ज महिलाओं को ही दिया जाएगा। यानी कर्ज के मामले में महिलाओं को वरीयता दी जाएगी। महिलाओं को अपनी मनपसंद घरेलू कामों के साथ-साथ छोटे-मोटे कारोबार के लिए भी कर्ज मिलेगा। महिला शिक्षा के लिए इस बैंक में अधिक से अधिक दस लाख रुपए ऋण की सुविधा दी गई है। जिसमें भी उन्हें चार लाख के ऋण पर कोई ब्याज नहीं देना होगा, जबकि उससे ऊपर की राशि पर उन्हें सिर्फ पांच फीसद ब्याज देना होगा।

बैंक की एक और अहम खासियत इसमें हर वर्ग की महिलाओं को खाता खोलने की सहूलियत होना है। पढ़ी लिखी महिलाएं तो किसी भी बैंक में खाता खोल सकती हैं, लेकिन सबसे ज्यादा परेशानी ग्रामीण और अनपढ़ महिलाओं को होती है। खाता खोलने से लेकर उसके संचालन तक में उन्हें काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है।

यही वजह है कि सरकार ने इस तरह के बैंक की परिकल्पना की, जिसमें महिलाओं को अपना काम करने में आसानी हो। वे चाहे पैसा जमा करवाएं या ऋण लें, उनका काम आसानी से हो जाए। महिला बैंक का मुख्य जोर निम्न और मध्यम वर्ग की महिलाओं की आर्थिक क्षमता को बढ़ाना है, जिससे उनकी समाज में ज्यादा से ज्यादा आर्थिक भागीदारी बढ़े। बैंक इन महिलाओं की छोटी सी छोटी जरूरतों को पूरा करने में मदद करेगा।

रोजमर्रा के कामकाज में महिलाओं को घर, कार्यस्थल हर जगह पर भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। भारतीय महिला बैंक यह सब काम करेगा। बैंक महिलाओं को उचित निवेश की सलाह देने के साथ-साथ उन्हें अच्छी और भरोसेमंद सेवाएं भी देगा। यही नहीं महिला स्वयं सहायता समूहों के लिए भी ऋण मुहैया कराएगा। महिला बैंक अपनी महिला ग्राहकों के लिए कारोबार और विकास पत्राचार सुविधा भी शुरू करेगा। विकास अधिकारी, महिलाओं को आर्थिक मामलों और बैंकों में लेन-देन के लिए प्रशिक्षित करेंगे, जिसमें आर्थिक विकास और सशक्तीकरण के तहत उन्हें ऋण देने और अन्य गतिविधियों के बारे में प्रशिक्षिण दिया जाएगा।

माना जा रहा है कि जब हर महिला तक वित्त और बैंकिंग सुविधा पहुंचेगी, तो उनका आर्थिक सशक्तीकरण भी होगा। इससे महिलाओं की तस्वीर और तकदीर बदलेगी। महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण होगा, तो देश भी सशक्त होगा। महिला बैंक उन्हें लैंगिक भेदभाव से भी बचाएगा। यह भेदभाव उसे हर क्षेत्र में भुगतना पड़ता है। जरूरी यह भी है कि ग्रामीण इलाको में महिलाओं को बैंक तक लाने के लिए उन्हें इस बारे में सबसे पहले साक्षर करना होगा। महिलाएं शिक्षित होंगी, तभी महिला बैंक का सही फायदा उठा पाएंगी।

जनसत्ता 05.05.2014

*jahidk.khan@gmail.com*

# बेघर बच्चों का होगा बैंक एकाउंट, बनेंगे लखपति

**नई दिल्ली (एसएनबी)।** रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के एक आदेश के बाद अब दस साल से अधिक उम्र के बच्चों को अपना बचत खाता खुलवाने के लिए किसी पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। बच्चे स्वयं अपना एकाउंट संचालित भी कर सकेंगे। अनाथ बच्चे भी अपना एकाउंट खुलवा सकते है।

आरबीआई के इस फैसले का सड़कों पर रहने वाले कामकाजी बच्चों ने स्वागत किया है। उनका कहना है कि हम सड़कों व फुटपाथों पर रहते है, ऐसे में हमारे पास अपने पैसे सुरक्षित रखने का कोई जरिया नहीं था। हम अपने पैसे ऐसे लोगों के पास जमा करते थे, जहां से कई बार हमें अपने पैसे वापस नहीं मिलते थे। ऐसे में हम रोज जितना कमाते थे, उतना खर्च कर देते थे।

■ **आरबीआई के आदेश के बाद अब 10 साल से अधिक उम्र के स्ट्रीट चिल्ड्रन भी अपना बैंक खाता खुलवा सकेंगे**

ऐसे बच्चों के जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए काम करने वाली खुशबू जैन ने बतांया कि ये बच्चे दिन में 300 रुपए तक कमा लेते है, लेकिन एक पैसा भी नहीं बंचा पाते हैं। ऐसे ही बच्चों के लिए काम करने वाली संस्था चेतना के निदेशक संजय गुप्ता ने कहा कि यदि ये बच्चे 100 रुपए रोज अपने खाते में जमा करें, तो तीन साल में लखपति बन सकते है। पैसे जमा होने से इनका आत्मविश्वास बढ़ेगा और ये काफी हद तक नशे, अश्लील साहित्य व जुए जैसी बुरी लत से भी दूर रहेंगे।

स्टेशन पर रहने वाले 12 वर्षीय राघव और 15 वर्षीय अफजल (परिवर्तित नाम) ने आरबीआई के फैसले पर खुशी जताई है। राघव एक दिन में 150 रुपए और अफजल 200 रुपए तक कमा लेता है। दोनों ने कहा कि यदि उनका बैंक में खाता खुल जाता है, तो वे 100 रुपए रोज बचा सकते है। यह पैसे बुरे वक्त में उनके काम आ सकता है।

कबाड़ बीनने वाले 14 वर्षीय राहुल (परिवर्तित नाम) ने कहा कि वह रोज 200 रुपए कमा लेता है, लेकिन चोरी के डर से पूरे पैसे खर्च कर देता है। हालांकि वह चाहे तो रोजाना 100 रुपए बचा सकता है पर खाता खुलवाने के लिए उसके पास कोई प्रूफ नहीं है।

बाल कल्याण विभाग और गैर सरकारी संगठन इस बात के लिए प्रयत्नशील है कि जल्द से जल्द उन्हें आधार कार्ड दिए जाएं। कुछ को दिया भी जा चुका है। पानी की बोतल बेचने वाली 14 साल की सोनी (परिवर्तित नाम) ने कहा कि अरबीआई हमारे लिए मोबाइल बैंकिंग की सुविधा भी शुरू करे, जिसमें हमारे अंगूठे के निशान से हमारे खाते की पहचान हो।

राष्ट्रीय सहारा 08.05.2014

# चेतना जगाता एक स्कूल

• मो. शाहिद

दस से पंद्रह लोग लगभग दस साल के एक बच्चे को बर्तन चोरी करने के जुर्म में पीट रहे थे। एक महिला ने आगे बढ़कर उस बच्चे को बचाया और फिर उससे पूछा कि वह ऐसा क्यों कर रहा था? उसने बताया कि वह और उसके पिता कूड़ा बीनते हैं जो बीमार हैं। दुकान के आगे रखे बर्तनों को उठाकर वो इसलिए भागा था ताकि उनको बेचकर अपनी भूखी छोटी बहन के लिए खाने का इंतज़ाम कर सके...

वर्ष 2003 में खुद के साथ घटे इस हादसे ने 60 वर्षीय पानीपत निवासी कमला आर्य के जीवन का मकसद ही बदल दिया। उन्होंने माना कि इन जैसे बच्चों का जीवन सिर्फ शिक्षा ही बदल सकती है, परंतु घर का आर्थिक ज़रिया और आसपास स्कूल न हो पाने के कारण ऐसे बच्चे शिक्षा से कोसों दूर थे इसीलिए उन्होंने तय किया कि वह शिक्षा को उनके घर तक ले जाएंगी। हालांकि वे खुद ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं हैं, इसलिए उन्होंने लक्ष्मी नाम की लड़की को बतौर शिक्षिका साथ रखा। खाली पड़ी फैक्ट्री में बैठने की जगह तलाशी और बेकार पड़े दरवाज़े से ब्लैक बोर्ड बनाया गया। फिर 10 बच्चों से शुरू हुआ यह चेतना स्कूल। दस से साठ और साठ से 120... बच्चों की संख्या बढ़ती गई। बच्चे बढ़े तो खर्चा बढ़ने लगा, ऐसे में कमला आर्य की सहायता के लिए उनके पति दीपचंद निर्मोही सामने आए जो सरकारी स्कूल के प्रधानाचार्य के पद से रिटायर थे और वरिष्ठ बाल साहित्यकार हैं। उन्होंने अपने स्कूल के सहयोगियों, छात्रों, मित्रों से आर्थिक रूप से सहायता करने के लिए निवेदन किया।

**कमला आर्य खुद ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं हैं, लेकिन अपने सार्थक प्रयासों से वे झोपड़पट्टियों में रहने वाले सैकड़ों बच्चों की जिंदगी में शिक्षा का अलख जगा चुकी हैं।**

जिन बस्तियों में बच्चे थे, स्कूल खुलने लगे और वहीं के पढ़े-लिखे व्यक्ति को पढ़ाने की जिम्मेदारी सौंप दी गई। इन बस्तियों में ऐसी महिलाएं ज्यादा थीं, जो दूसरों के घरों में साफ-सफाई या सिलाई का काम करती थीं। उन महिलाओं को स्वावलंबी बनाने के उद्देश्य से सिलाई प्रशिक्षण केंद्र भी खोला गया। कामकाजी महिलाओं को पढ़ाने के उद्देश्य से पिछले वर्ष शाम के समय स्कूल की शुरुआत की गई, जिसमें 75 महिलाओं ने पढ़ना शुरू किया। आज ऐसे चार स्कूलों में 200 से ज्यादा महिलाएं शिक्षा पा रही हैं, सबसे उम्रदराज़ स्टूडेंट 65 वर्ष की हैं।

कमला आर्य द्वारा शुरू किया गया चेतना स्कूल का सफर, आज चेतना परिवार ट्रस्ट का रूप ले चुका है, जिसके रिटायर्ड आईपीएस, इंजीनियर, डॉक्टर और शिक्षाविद जैसे लोग सदस्य हैं।

दैनिक भास्कर 04.05.2014

# घटते लिंगानुपात को कम करने के लिए युवाओं की अनूठी पहल

जनसत्ता संवाददाता

नई दिल्ली, 15 अप्रैल। किसी भी समाज की पहचान इससे होनी चाहिए कि वह अपने बच्चों से कैसे पेश आता है। हमारे बच्चे, खासकर लड़कियां असुरक्षित हैं और यह राष्ट्रीय शर्म की बात है। हमें हर हाल में यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बच्चे जहां भी हों, सुरक्षित हों। हम देश की आर्थिक स्थिति और विकास दर पर कितनी चिंता और बहस करते हैं पर हम लाखों बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए कुछ नहीं करते हैं। ये विचार सेंटर फार एडवोकेसी और रिसर्च की ओर से हुई जनसुनवाई में रखे गए।

घटते लिंगानुपात और लैंगिक भेदभाव कम करने के लिए युवाओं ने मुहिम शुरू की। मिरांडा हाउस कालेज की महिला विकास सेल की अगुआई में विश्वविद्यालय के छात्रों और अन्य युवाओं के बीच तीन महीने से चल रही संवाद और हस्तक्षेप की प्रक्रिया लड़कियों के अधिकार के मुद्दे पर जनसुनवाई के साथ समाप्त हुई। इसमें शामिल युवा दिल्ली के पूर्वी, दक्षिण पूर्वी, उत्तर पूर्वी, दक्षिण पश्चिमी और दक्षिणी दिल्ली की नौ शहरी बस्तियों के थे। इसका आयोजन सेंटर फॉर एडवोकेसी एंड रिसर्च (सीएफएआर), मिरांडा हाउस और प्लान इंडिया की ओर से साझे तौर से किया गया।

मुहिम में नांगल राया की कोमल और सागरपुर की पल्लवी ने लैंगिक भेदभाव को खत्म करने के लिए मुहिम को ब्रिंगिग आउट ए प्लेटफार्म आफ एक्शन -ऑफ, फार एंड बाय द यंग पीपल बताते हुए कहा कि असुरक्षित वातावरण से अवसर कम होते हैं और भेदभाव बढ़ता है।

मिरांडा हाउस की प्रोफेसर बेदाद्युती झा ने कहा कि आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की स्थिति समाज की दूसरी महिलाओं के मुकाबले अच्छी होती है, बावजूद इसके उन्हें अपने अपने घरों में घरेलू हिंसा का सामना करना पड़ता है। कई बार कभी उनके पति तो कभी बेटे उनकी पिटाई करते हैं। यह समाज के अंदर के पितृसत्तात्मक सोच को बताता है। इन महिलाओं में से कई घेरलू हिंसा कानून के बारे में जानती हैं, लेकिन उन्हें इसका लाभ नहीं मिलता।

गर्ल चाइल्ड पर रपट को जारी करते हुए स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय के पूर्व सचिव और पापुलेशन फाउंडेशन आफ इंडिया के कार्यकारी निदेशक एआर नंदा ने इस रिपोर्ट की खासियत के बारे में बताते हुए कहा कि इसे कालेज और स्कूलों के अलावा आम बस्तियों में रहने वाले मध्यम वर्ग के युवाओं ने तैयार किया है। इसके बारे में बताते हुए नंदा ने कहा कि अब वे दिन बीत गए जब विशेषज्ञ और नीति निर्माता एक बंद कमरे में बैठकर युवाओं के भविष्य का फैसला करते थे। आज के बदले दौर में हम युवा शक्ति की ताकत को देख रहे हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कोई भी नीति युवा प्रतिनिधियों की भागीदारी और बदलाव के नजरिए के बिना नहीं बन पाएगी।

शैलजा चंद्रा ने बताया कि ओईएसडी की ओर से सामाजिक संस्थाओं में लैंगिक इंडेक्स की नई सूची में दुनिया के 86 देशों में भारत 56वें स्थान पर है। उन्होंने इसकी वजह परिवार में बेटियों की जगह बेटों को अहमियत देना, महिलाओं के प्रति हिंसा और पैतृक संपत्ति में केवल बेटों को ही हिस्सेदारी देने का चलन का जिक्र करते हुए कहा कि महिलाओं और लड़कियों के आत्मविश्वास को बढ़ाने की जरूरत है। इसके लिए उन्हें सार्वजनिक मंचों और बहसों में हिस्सा लेना चाहिए, तभी यह धारणा बनेगी कि इनकी अहमियत कम नहीं है।

युवाओं की राय सुनने के बाद बाल जीवन और पोषण के सतीश अग्निहोत्री ने युवाओं से अपील की कि वे प्लेटफॉर्म ऑफ़ एक्शन को एक सतत अभियान में बदलें, जिसका उद्देश्य सभी गतिविधियों में लड़कियों की सुरक्षित भागीदारी को बढ़ावा देना हो। वे बिना किसी डर के बदलाव के वाहक बने हैं। ऐसे उदाहरणों से युवाओं को अपना रोल मॉडल मिलेगा। खासकर डगमगाते आत्मविश्वास और निराशा में डूबी लड़कियों को यह काफी प्रेरित करेगा।

महिला और बाल विकास मंत्रालय की ओर से वरिष्ठ आर्थिक सलाहकार पद्मजा मेहता ने जानकारी दी कि मंत्रालय सभी साझेदारी से विचार विमर्श के बाद बाल विवाह की स्थिति में गिरफ्तारी के लिए राष्ट्रीय योजना बना रही है। महिला संसाधन केंद्र की कार्यकारी निदेशक रश्मि सिंह ने कहा कि बीते डेढ़ सालों से आयोग का लक्ष्य लिंगानुपात की गिरावट को कम करना है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि केवल लिंगानुपात में गिरावट ही मुख्य चुनौती नहीं है बल्कि इसका इस्तेमाल महिलाओं और लड़कियों के स्तर को मापने के लिए पैमाने के तौर पर हो सकता है। मिरांडा हाउस की एसोसिएट प्रोफेसर बिजयलक्ष्मी नंदा ने बताया कि हम लोगों ने कानूनी विशेषज्ञ, महिला कार्यकर्ता, पुलिस, ऑटो ड्राइवर और बस्तियों में रहने वाले लोगों से बातचीत की। इस बातचीत में उनकी शंका, उनकी पीड़ा और संघर्ष करने के जज्बा का पता चला। नंदा के मुताबिक इस मज़बूत साझेदारी से जल्द ही कार्रवाई का मंच भी शुरू होगा।

सरिता विहार के राजस्थानी कैंप की 14 साल की ज्योति ने जूरी के सामने कहा कि मेरे पिता दिहाड़ी मजदूर हैं, जबकि मां घरेलू मजदूरी करती हैं। वे नहीं चाहते हैं कि हमें भी ऐसा ही काम करना पड़े। उनकी दिलचस्पी हमें पढ़ाने में है। इससे हमारा आत्मविश्वास बढ़ेगा और हमारे लिए कई अवसरों के रास्ते खुल जाएंगे। फैजला कहती हैं कि स्कूलों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि शिक्षक और छात्र अनुपस्थित रहते हैं और किताबें उपलब्ध नहीं होतीं। शौचालय साफ नहीं होते हैं। गिनती के कंप्यूटर होते हैं, अकादमिक वातावरण अच्छा नहीं होता, बीच में ही पढ़ाई छोड़ने वालों की संख्या बहुत होती है। योग्य शिक्षकों की भी कमी है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि पांचवीं में जाकर अंग्रेजी की पढ़ाई शुरू होती है।

मानवाधिकार कार्यकर्ता और हक की प्रमुख इनाक्षी गांगुली ने कहा कि बच्चे ख़ासकर लड़कियों को जिस तरह की स्थितियों का सामना करना पड़ रहा है उससे जाहिर है कि उन्हें आधारभूत सामाजिक सुरक्षा नहीं मिल रही है जो हर बच्चे का संवैधानिक अधिकार है और हर सभ्य समाज से इसकी उम्मीद की जाती है। उन्होंने कहा कि किसी भी समाज की पहचान इससे होनी चाहिए कि वह अपने बच्चों से कैसे पेश आता है। हमारे बच्चे, ख़ासकर लड़कियां असुरक्षित हैं और यह राष्ट्रीय शर्म की बात है। हमें हर हाल में यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बच्चे जहां भी हों, सुरक्षित हों।

जनसत्ता 16.06.2014

## तुम लड़की हो तुम्हें क्यों पढ़ना है?

बेटी से -
बाप — पढ़ना है! पढ़ना है! क्यों पढ़ना है?
पढ़ने को बेटे काफ़ी हैं, तुम्हें क्यों पढ़ना है?
बाप से -
बेटी — जब पूछा ही है तो सुनो
मुझे क्यों पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं
मुझे पढ़ना है

पढ़ने की मुझे मनाही है सो पढ़ना है
मुझ में भी तरुणाई है सो पढ़ना है
सपनों ने ली अंगड़ाई है सो पढ़ना है
कुछ करने की मन में आई है सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं मुझे पढ़ना है

मुझे दर-दर नहीं भटकना है सो पढ़ना है
मुझे अपने पांवों चलना है सो पढ़ना है
मुझे अपने डर से लड़ना है सो पढ़ना है
मुझे अपना आप ही गढ़ना है सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं मुझे पढ़ना है

कई ज़ोर जुल्म से बचना है सो पढ़ना है
कई कानूनों को परखना है सो पढ़ना है
मुझे नये धर्मों को रचना है सो पढ़ना है
मुझे सब कुछ ही तो बदलना है सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं मुझे पढ़ना है

हर ज्ञानी से बतियाना है सो पढ़ना है
मीरा का गाना गाना है सो पढ़ना है
मुझे अपना राग बनाना है सो पढ़ना है
अनपढ़ का नहीं ज़माना है सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं मुझे पढ़ना है।

जागोरी, गानों की पुस्तिका, 'आओ मिलजुल गाये' से

कमला भसीन

# कुलियों की दुनिया में मंजू

**अपने** वजूद की लड़ाई लड़ने वाली महिलाओं में हम ज्यादातर उन्हीं की चर्चा करते हैं, जिनका जीवन सफल माना जाता है। लेकिन ऐसा करना संतुलित नजरिया नहीं कहा जा सकता। हजारों महिलाएं ऐसी भी हैं जिन्होंने पुरुषों के वर्चस्व वाले ऐसे क्षेत्र में अपनी धमाकेदार इंट्री से लोगों को चौंका दिया, जहां जाना महिलाएं ही नहीं पुरुष भी पसंद नहीं करते। करियर के तौर पर उनकी यह इंट्री सफलता नहीं मानी जा सकती लेकिन इसने यह जाहिर किया है कि महिलाएं कुछ भी कर सकती हैं। मंजू ऐसी महिलाओं में से एक हैं। वह भारत की पहली महिला कुली हैं। कुली बनना शायद ही कोई पसंद करे, लेकिन मंजू के लिए यह एक बेहतर विकल्प के तौर पर दिखा। उनके सामने दूसरा कोई जरिया नहीं था, लेकिन लाल ड्रेस पहनकर जब वे पुरुष कुलियों की भीड़ में आईं तो लोगों की शाबाशी ने उनका आत्मविश्वास बढ़ा दिया।

मंजू कहती हैं कि स्टेशन की आपाधापी में काम करना मुश्किल तो है लेकिन जब अपने बच्चों को पालना हो तो सब काम आसान हो जाता है। मंजू अपना काम जयपुर के रेलवे स्टेशन पर 177 पुरुष कुलियों के बीच करती हैं। यह वही स्टेशन है जहां उसके पति भी काम करते थे। पति महादेव एक साल पहले लिवर में बीमारी के बाद गुजर गए। इसके बाद तीन-तीन बच्चों के पालन-पोषण का भार उनके कंधों पर आ गया। मजबूरन उन्हें बिल्ला अपनी बांह पर बांधना पड़ा। यह वही 15 नंबर बिल्ला था जो कभी उसके पति लगाते थे। दरअसल, महादेव की मौत के पहले वह गांव में ही रहती थीं। उनके ससुराल में पति के अलावा कोई पुरुष सदस्य नहीं था। पिता भी नहीं हैं। एक भाई और छह बहनें जरूर हैं लेकिन वे अपना गुजारा भी बमुश्किल कर पाती हैं।

मंजू बताती हैं कि जब उन्होंने जयपुर स्टेशन में काम संभाला तो आर्थिक दिक्कतें तो कम हुईं लेकिन यह काम बहुत हताश करने वाला था। शुरू-शुरू में मर्दों की जमात में उन्हें बैठने में भी मुश्किल होती, लोगों का ताज्जुब से देखना उन्हें और परेशान करता। शुरू के कई दिन घर में रोते-रोते बीते, लेकिन फिर धीरे-धीरे सबकुछ सामान्य होता गया। हालांकि काम के कुछ दिनों के बाद वे बीमार पड़ गईं और 30-35 हजार इलाज में खर्च हो गए। यह राशि उनके लिए काफी बड़ी थी।

मंजू बताती हैं कि महिलाएं शारीरिक रूप से प्राकृतिक तौर पर पुरुषों से कमजोर होती हैं और यह बात इस काम में बाधा खड़ी करती है। पुरुष जितनी खेप लगा सकते हैं महिलाएं नहीं। अपने बारे में वे कहती हैं कि मैं जाड़े में तो काम कर लेती हूं लेकिन गर्मी में यह काफी मशक्कत भरा होता है। गर्मी में सिर्फ सुबह और शाम दो-दो घंटे काम करती हूं जबकि गर्मी में तीन-तीन घंटे के तीन खेप लगाती हूं। सहकर्मियों और कुलियों के एसोसिएशन की तारीफ करते हुए वे कहती हैं कि उनकी मदद के बिना तो जीवन और कठिन होता। मंजू स्टेशन के पास ही 2,500 रुपये के किराए के मकान में रहती हैं। बड़ी बेटी आरती आठवीं में पढ़ती है और पूजा पांचवीं में। छोटा बेटा राहुल दूसरी में पढ़ता है। उनकी पढ़ाई मंजू के लिए बहुत बड़ा आसरा है। मंजू कहती हैं कि मेरी तो जैसे-तैसे गुजर रही है, लेकिन बच्चों के साथ ऐसा न गुजरे, इसके लिए मैं जी जान लगा दूंगी। यही कारण है कि मंजू बच्चों की पढ़ाई को लेकर बहुत सक्रिय हैं। खुद अनपढ़ हैं लेकिन घर में रहते हुए इस बात का पूरा ख्याल रखती हैं कि बच्चे ज्यादा से ज्यादा देर तक पढ़ें और स्कूल में पढ़ी बातों को दोहराएं।

**करियर के तौर पर मंजू की यह इंट्री सफलता नहीं मानी जा सकती लेकिन इसने यह जाहिर किया है कि महिलाएं कुछ भी कर सकती हैं। मंजू ऐसी महिलाओं में से एक हैं।**

■ प्र. : पूजा कुमारी

राष्ट्रीय सहारा 30.04.2014

# स्त्री अधिकार और आंबेडकर

सुजाता पारमिता

आंबेडकर ने कहा था, 'मैं नहीं जानता कि इस दुनिया का क्या होगा, जब बेटियों का जन्म ही नहीं होगा।' स्त्री सरोकारों के प्रति डॉ भीमराव आंबेडकर का सर्मपण किसी जुनून से कम नहीं था। छियासी साल पहले, अट्ठाईस जुलाई 1928 के दिन, उन्होंने बंबई विधान परिषद में स्त्रियों के लिए प्रसूति से जुड़े पहलुओं से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण विधेयक पेश किया गया था। उसका जोरदार समर्थन करते हुए उन्होंने कहा था कि यह देश के हित में है कि मां को बच्चे के जन्म के दौरान आराम मिले। सरकारी और निजी, दोनों क्षेत्रों के अंतर्गत आने वाले तमाम कारखाने, खदान या ऐसे सभी उपक्रम जहां भारी संख्या में स्त्रियां मजदूरी करती हैं और जो खतरनाक हैं और जिनमें काम करना उनके लिए जानलेवा भी सिद्ध हो सकता है, यह उनकी जिम्मेदारी है कि वे इस खर्च का वहन करें, क्योंकि वे स्त्री श्रमिकों को तभी काम पर रखते हैं, जब उन्हें इससे ज्यादा फायदा होता है। इस विधेयक का मुख्य आधार अन्य सुविधाओं के साथ ही महिला श्रमिकों के लिए वेतन समेत छुट्टियों का प्रावधान था। आंबेडकर ने ब्रिटेन सरकार से इस विधेयक को केवल बंबई विधान परिषद क्षेत्र तक सीमित न रख कर देश भर में लागू किए जाने की अपील की। जबकि भारतीय सामाजिक परंपरा में दलितों और स्त्रियों के लिए अपने श्रम के एवज में किसी सहूलियत की उम्मीद करना लगभग अपराध माना जाता था।

इसके बाद आंबेडकर ने बंबई विधान परिषद में पीजे रोहम द्वारा नवंबर, 1938 में जनसंख्या नियंत्रण विधेयक के रूप में एक ऐतिहासिक विधेयक पारित करवाया। उस विधेयक ने मनु के सदियों से चले आ रहे उस दर्शन को ध्वस्त कर दिया, जिसमें स्त्री को एक ऐसे गुलाम के रूप में जीने को कहा गया था जिसका अपनी ही देह और कोख पर अधिकार न हो। उस दर्शन के मुताबिक उसका जन्म स्त्री के रूप में इसीलिए हुआ है कि वह पुरुष की सेवा करे, उसे तृप्त करे और बच्चे पैदा करने का साधन बनी रहे। यह सिद्धांत सदियों से भारतीय स्त्रियों की भयानक स्थिति के लिए जिम्मेदार रहा और आज भी उसके खिलाफ कई रूपों में संघर्ष जारी है। भारत के इतिहास में पहली बार इस विधेयक ने स्त्रियों को यह अधिकार दिया कि अनचाहे गर्भ से मुक्ति उनका अपना निर्णय होगा और अपनी देह और कोख पर उनका अधिकार। साथ ही आंबेडकर ने तत्कालीन सरकार से ऐसी व्यवस्था करने की अपील की कि हर भारतीय स्त्री को अनचाहे गर्भ से मुक्ति उसकी मर्जी से और आसानी से मिले।

आंबेडकर को वायसराय की काउंसिल में बीस जुलाई 1942 को बतौर श्रम-सदस्य शामिल किया गया। वहां अपने चार साल (1942-46) के कार्यकाल में उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण कानून बनाए और कई पुराने कानूनों में बदलाव किए। यह उन्हीं की देन है कि भारतीय श्रम कानून का स्वरूप न केवल बदला, बल्कि कहीं ज्यादा मानवीय हुआ और महिला श्रमिकों के लिए विशेष सुविधाएं लागू की गईं। कारखानों और खदानों में काम के घंटे घटा कर फिर से निर्धारित किए गए। स्त्री और पुरुष श्रमिकों के लिए समान वेतन के अधिकार का भी प्रावधान किया गया। छोटे बच्चों के लिए काम की जगह के आसपास ही पालनाघर बनाए गए। स्वास्थ्य और जीवन बीमा की शुरुआत की गई, सामाजिक सुरक्षा अधिनियम बनाया गया।

आज देश भर में जो कर्मचारी राज्य बीमा निगम के अस्पताल चलाए जा रहे हैं, इस नीति को भी आंबेडकर ने ही मूर्त रूप दिया था। निश्चित तौर पर उनका योगदान श्रम कानून के क्षेत्र में बहुत व्यापक और सराहनीय था। अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि उस समय पूंजीपति वर्ग द्वारा चलाए जा रहे कारखानों में पीने के पानी तक की व्यवस्था नहीं थी और वह आंबेडकर के प्रयासों से ही संभव हो सकी। यों भी, पानी का अधिकार दलितों के लिए हमेशा ही संघर्ष का कारण रहा। खुद आंबेडकर इस दर्द के साथ ही जन्मे और इस समस्या का सामना किया।

अप्रैल 1947 में डॉ आंबेडकर ने हिंदू कोड बिल का मसविदा तैयार कर संविधान सभा में रखा, जिस पर बहस होनी थी। यह बिल मुख्य रूप से संयुक्त या अविभाजित हिंदू परिवार में संपत्ति के अधिकार से संबंधित था। यह अगर उस वक्त पारित हो गया होता तो स्त्रियों को स्वतंत्र और आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में मील का पत्थर साबित हो सकता था। यह सिर्फ स्त्री अधिकारों पर आधारित था और यही इस बिल की खासियत थी। इसमें स्त्रियों को अपनी मर्जी से विवाह और तलाक, पति से अलग रहने पर गुजारा भत्ता, गोद लेने (बच्ची को भी गोद लिए जाने) और बच्चों के संरक्षण का भी अधिकार दिया गया था। संपत्ति का विभाजन होने पर उसमें घर की स्त्रियों के रूप में मां, पत्नी और बेटी, सभी का हिस्सा निर्धारित किया गया। इस क्रांतिकारी बिल से उस वक्त तूफान आ गया था। जिस देश में स्त्री को इंसान होने के बुनियादी अधिकारों से भी वंचित किया गया था, उसे एक साथ इतने सारे हक दिए जाने वाले थे। लेकिन आखिरकार फिजूल की प्रक्रिया से जूझते रहने के बाद इस बिल को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। हालांकि इसमें सुझाए गए चार प्रावधानों को तब किसी तरह पारित किया गया।

**आंबेडकर ने बंबई विधान परिषद में नवंबर, 1938 में एक ऐतिहासिक विधेयक पारित करवाया। उस विधेयक ने मनु के सदियों से चले आ रहे उस दर्शन को ध्वस्त कर दिया, जिसमें स्त्री को एक ऐसे गुलाम के रूप में जीने को कहा गया था जिसका अपनी ही देह और कोख पर अधिकार न हो।**

स्वतंत्र भारत में जब आंबेडकर को संविधान निर्माण का जिम्मा दिया गया तो जैसी उनसे उम्मीद थी, उन्होंने जाति, धर्म और गोत्र के सारे बंधन तोड़ कर सभी भारतीयों के लिए समता के अधिकार को प्राथमिकता दी। आज भारतीय संविधान अपने सभी नागरिकों को समान अधिकार की गारंटी देता है, चाहे वह अंबानी हों या घरों में बर्तन मांज कर परिवार का पेट भरती स्त्रियां या फिर भीख मांग कर गुजारा करते लोग। खासतौर पर स्त्रियों के साथ किसी भी आधार पर भेदभाव को कानूनी तौर पर जुर्म माना गया।

चार साल बाद कानूनमंत्री के रूप में आंबेडकर ने एक बार फिर हिंदू कोड बिल को संसद में रखा, लेकिन उनकी तमाम कोशिशें बेकार हो गईं जब यह बिल भारी मतों से पराजित हो गया। हिंदू कोड बिल का पराजित होना आंबेडकर की निगाह में उनकी निजी हार थी। स्त्री अधिकारों के प्रति वे कितने संवेदनशील थे, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इस हार के बाद उन्होंने 27 नवंबर 1951 को कानूनमंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया। तब से आज तक इस बिल को कई टुकड़ों में पारित किया गया, लेकिन एक तरह से देखें तो 2006 में बने घरेलू हिंसा कानून ने उनके सपने को पूरा किया।

आंबेडकर महिलाओं और दलितों की शिक्षा, प्रगति और जागरूकता के लिए जिंदगी भर संघर्ष करते रहे। उनके सभी सामाजिक आंदोलनों में दलित स्त्रियां भारी संख्या में शामिल रहीं, चाहे वह पानी के सवाल पर हुआ 'महाड सत्याग्रह' हो या मंदिर प्रवेश के लिए 'काला राम सत्याग्रह' या फिर 1942 में नागपुर में आयोजित दलित महिला अधिवेशन, जिसमें पच्चीस हजार दलित महिलाओं ने शिरकत की थी। उस अधिवेशन में आठ महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए गए, जिनमें से एक, भारतीय स्त्रियों के लिए तलाक के अधिकार से संबंधित था।

कमजोर सामाजिक तबकों की स्त्रियों की स्थिति बदलने का संघर्ष आंबेडकर के लिए एक 'महायुद्ध' था, जिससे वे एक योद्धा की तरह लड़े। उनका संघर्ष देश के उस तबके के लिए था जो सम्मान और न्याय के लिए सदियों से संघर्ष कर रहा था। आंबेडकर को दलितों और स्त्रियों के लिए हर उस स्थिति से लड़ना था जो उनके हालात के लिए जिम्मेदार थी। उन्होंने समय-समय पर ऐसे कई आंदोलन किए, जिन्होंने हिंदू धर्म की जड़ों पर चोट की। पच्चीस दिसंबर 1927 को उन्होंने महाड (महाराष्ट्र) में मनु-स्मृति को जलाया था, जिसे 'हिंदू धार्मिक संविधान' माना जाता रहा और जो दलितों और स्त्रियों की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार था। उस वक्त यह ऐसा 'शॉक-ट्रीटमेंट' साबित हुआ जिससे हिंदुत्व की जड़ें हिल गईं और जिसने भारतीय समाज को यह सोचने पर बाध्य कर दिया कि धर्म से भी विद्रोह किया जा सकता है; धर्म पत्थर पर लिखा फरमान नहीं है, जिसे बदला नहीं जा सकता। इन्हीं हालात में दलितों और स्त्रियों के बीच धार्मिक बेड़ियां टूटीं, अंधविश्वास के 'उद्योग' को भारी धक्का पहुंचा, शिक्षा और जागरूकता की शुरुआत हुई।

आंबेडकर जानते थे कि वे जिस वर्ग के लिए संघर्ष कर रहे हैं वह सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक, सब तरह से कमजोर है। उस स्थिति से लड़ना और जीतना कोई आसान काम नहीं। यह चौतरफा लड़ाई थी, जिसमें एक ओर ताकतवर हिंदू धर्म-रक्षक भी थे। लंबी चली लड़ाई में आंबेडकर ने कई आंदोलन किए। मंदिर प्रवेश के मुद्दे पर उन्होंने 1927-30 के बीच दलितों के साथ नाशिक के काला राम मंदिर, पूना के पर्वती और अमरावती के अंबादेवी मंदिर में प्रवेश किया, जहां उन्हें हिंसा का भी सामना करना पड़ा।

हिंदू धर्म से टक्कर आंबेडकर के लिए बेमानी था, लेकिन दलितों के बीच स्वाभिमान जगाने के लिए यह जरूरी था। 1929 में येऊला के अधिवेशन में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि दलितों को हिंदू धर्म में अत्याचार सहते रहने की कोई आवश्यकता नहीं, वे चाहें तो किसी भी धर्म में प्रवेश कर सकते हैं।

इसी के बाद बारह महारों (दलित) ने हिंदू धर्म त्याग कर इस्लाम को अपना लिया। इस घटना से हिंदू धर्माधीशों के होश उड़ गए। आंबेडकर ने अपने अंतिम दिनों तक आंदोलन को जिंदा रखा। अपनी मृत्यु से महज दो महीने पहले उन्होंने हिंदू धर्म त्याग कर चौदह अक्तूबर 1956 को नागपुर की दीक्षा भूमि में लगभग चार लाख दलितों के साथ बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। उसे आज तक दुनिया का सबसे बड़ा धर्म परिवर्तन माना जाता है। बौद्ध धर्म में प्रवेश की प्रक्रिया भारत में आज भी जारी है।

आजादी के अड़सठ सालों बाद भारत में सवर्ण स्त्रियों की दशा में काफी बदलाव आया है। लेकिन दलित स्त्रियां आमतौर पर आज भी लगभग उसी स्थिति में हैं। आधुनिक स्त्रीवादी आंदोलन भारत में सत्तर के दशक में शुरू हुआ, लेकिन उसका नेतृत्व अब तक सवर्ण महिलाओं के ही पास है और उनके इर्दगिर्द घूमता है। कुछ दलित स्त्रियों ने इस मुद्दे पर जरूर आंदोलन किया, लेकिन उसका फायदा इस समूचे आंदोलन के नेतृत्व-वर्गों को ही मिला, उन्हें नहीं, जो वास्तव में ज्यादा शोषण का शिकार थीं।

भारत में स्त्रियों के अधिकार और सम्मान के लिए सबसे ज्यादा ज्योतिबा फुले, उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले और डॉ आंबेडकर ने संघर्ष किया, लेकिन महाराष्ट्र के स्त्रीवादी आंदोलन को छोड़ शेष भारत में तो उनका नाम भी किसी स्त्रीवादी आंदोलन में नहीं लिया जाता। यह ब्राह्मणवादी मानसिकता जहां स्त्रीवादी आंदोलन को सीमित कर रही है, वहीं इससे दलित स्त्रीवादी आंदोलन को अलग विस्तार मिल रहा है। दलित स्त्रीवादी आंदोलन का इतिहास काफी पुराना है और उन्हें लड़ना आता है। लेकिन इस अलगाववादी सोच से आखिरकार किसका नुकसान होगा. यह जाहिर-सी बात है।

*sujataparmita@yahoo.com*

जनसत्ता 14.04.2014

## महिलाओं के कानूनी अधिकार

- **आपराधिक संशोधन कानून 2013** व्यक्ति विशेष की खरीद फरौख्त करना, बलात्कार के अपराधी को सजा व जुर्माना सांकेतिक ढ़ग से किसी महिला के साथ अश्लील बातें करना, किसी महिला या लड़की को शारिरिक रूप से फब्बतिया कसना तेजाब से हमला करना।
- **व्यक्ति विशेष की खरीद फरौख्त करना** : यदि कोई व्यक्ति किसी भी लडकी/महिला को वैश्यवृति के लिए खरीदता या बेचता है तो उसे 10 साल की कैद व जुर्माने की सजा का प्रावधान है।
- **बलात्कार के अपराधी को सजा व जुर्माना** : कम से कम 7 साल उम्रकैद की सजा तथा जुर्माने का प्रावधान है।
- **सांकेतिक ढ़ग से किसी महिला के साथ अश्लील बातें करना** : यदि कोई व्यक्ति महिला की मर्यादा का अपमान करने की नियत से किसी शब्द का उच्चारण करता है, इशारा करता है या किसी वस्तु का प्रदर्शन करता है तो उसे 1 साल तक की सजा तथा जुर्माना हो सकता है।
- **समान कार्य के लिए समान मजदूरी** : महिला भी पुरुष के बराबर समान वेतन पाने की अधिकारी है
- **मातृत्व लाभ** : वेतन पर काम करने वाली महिलाएं मातृत्व लाभ के लिए छः सप्ताह की छुट्टी लेने का अधिकार है।
- **गर्भ का चिकित्सकीय समापन** : जबरदस्ती गर्भपात करवाना कानूनी अपराध है। विशेष परिस्थियों में ही सरकार द्वारा मान्य अस्पताल में ही गर्भपात करवाया जा सकता है।
- **कारखाना अधिनियम** : कारखानों में रात्रि के समय कार्य पर रोक एवं छोटे बच्चों के लिए पालनगृह की व्यवस्था।
- **भरण-पोषण करने का अधिकार** : जो महिलाएं आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर नहीं हैं उन्हें अपने पति से भरण पोषण का खर्च प्राप्त करने का अधिकार है। ये अधिकार पति के साथ रहते हुए अथवा पति से अलग रहने पर प्राप्त किया जा सकता है।
- **माता-पिता की सम्पति में उत्तराधिकार** : बेटियों को भी माता-पिता की सम्पत्ति में उतना ही अधिकार है जितना कि बेटों को तथा बेटियां भी उत्तराधिकारी हैं।
- **पंचायतों में एक तिहाई आरक्षण** : पंचायतों में महिलाओं के लिए एक तिहाई आरक्षण की व्यवस्था की गई है।
- **चुनाव लड़ने का अधिकार** : महिलाओं को भी पुरुषों की भांति चुनाव लड़ने का अधिकार है।
- **घरेलू हिंसा व उत्पीड़न के विरूद्ध अधिकार** : घरेलू हिंसा व उत्पीड़न के खिलाफ महिलाओं को न्याय दिलवाने के लिए अधिनियम बनाया गया है जिसके अन्तर्गत 3 साल की कैद और जुर्माने की सजा हो सकती है।
- **कानूनी सहायता का अधिकार** : विधिक एवं न्यायिक प्राधिकरण द्वारा महिलाओं को मुफ्त कानूनी सहायता देने का प्रावधान है
- **दहेज संबंधी कानून** : दहेज लेना व देना कानूनी अपराध है। इसमें 5 साल की कैद व 15 हजार रुपये जुर्माने का प्रावधान है।
- **बाल-विवाह** : 18 साल से कम उम्र की लड़की की शादी करने पर 3 माह की कैद तथा जुर्माना हो सकता है।

अमर उजाला 02.04.2014

देखी सुनी – मुख्य हिंदी समाचार पत्रों में छपने वाले महिला संबन्धित खबरो व लेखो का त्रैमासिक संकलन है। संकलित लेखों में व्यस्त विचार लेखकों के निजी विचार है, ज़रुरी नही यह हमारी संस्थागत सोच व क्रियांवयन को दर्शाते हो।

Bread for the World, Misereor के सहयोग से प्रकाशित

निशुल्क प्रतियों के लिए संपर्क करें–
जागोरी, बी–114, शिवालीक, मालवीय नगर, नई दिल्ली–110017,
फ़ोनः 011–26691219, 26691220
email: resource@jagori.org/jagori@jagori.org,www.jagori.org